श्रीः

सर्वधर्म्म समन्वय

(ही हिन्दू सङ्गठन की कुंजी है)















लेखक—

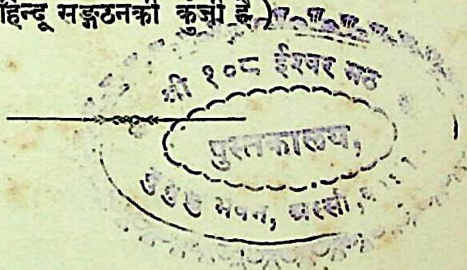
राय बहादुर पं० श्रीदत्त शर्म्मा

श्रीः

सर्वधर्म समन्वय

ही

(हिन्दू सङ्गठनकी कुंजी है)



लेखक—

राय बाहादुर पं० श्रीदत्त शर्मा

(सं० २००२ विक्रमाब्दि)

प्रथमवार १०००]

[मूल्य ॥)

प्रकाशक—
आत्म विज्ञान मंडल
श्री हरियाणा शेखावाटी ब्रह्मचार्य्याश्रम
भिवानी, पंजाब।

पुस्तक प्राप्तिस्थानानि—

पता :—
मन्त्री आत्म विज्ञान मंडल
श्रीहरियाना शेखावाटी ब्रह्मचार्य्याश्रम
भिवानी (हिसार पंजाब)

ब्रांच :—
आत्म विज्ञान मंडल
राजस्थान वानप्रस्थाश्रम कनखल, जिला—सहारनपुर (हरद्वार)
पं० रामशरणजी शर्मा (कथाकोविद)
१६।१।१, हरिसन रोड (बांगड़ बिल्डिंग) कलकत्ता।

मुद्रक—
उमादत्त शर्मा
रत्नाकर प्रेस
११-ए, सैयद साली लेन,
कलकत्ता।

विषय सूची

—:*:—

———



श्रीः

प्रस्तावना

आत्म-विज्ञान मंडल क्या चाहता है ?

यह बात कहनेमें कोई संकोच नहीं है कि भारतवर्षमें आठ सौ वर्ष मुसलमानोंका राज्य रहा, और कुछ धर्म्मान्ध मुसलमान बादशाहोंने हिन्दुओंको जबर्दस्ती मुसलमान बनाया और वेदशास्त्रोंको आगमें डाल-डालकर हमाम गर्म किये गये, लेकिन जो हमारी धार्मिक हानि १५० सालकी अङ्गरेजी हुकुमतमें हुई है, वह एडीसे चोटी तकका जोर लगाकर भी मुसलमान न कर सके थे। यह बात हम डंकेकी चोट मानते हैं कि अङ्गरेजी राज्यसे देशकी आर्थिक उन्नति और वैज्ञानिक उन्नति अवश्य हुई है, किन्तु उस उन्नतिमें झूठ, दुराचार, बेईमानी, विश्वासघात, पारस्परिक वैर, तृष्णा, व्यभिचार, मत्सरता इस प्रकार ओत-प्रोत हैं कि किसी माईक्रस्कोप यन्त्रसे भी मालूम करके निकालना कठिन है। इस विदेशी शिक्षा-दीक्षा और विज्ञान (साइन्स) ने इस प्रकारकी मनोवृत्ति बनादी है कि वह अपने पूर्वज ऋषि-मुनि महात्माओं, तपस्वियों और वेदशास्त्रोंकी खिल्ली उड़ाते हैं। इसमें उनका अपराध नहीं है, क्योंकि उन्होंने वेद, वेदांग, दर्शन उपनिषदोंके ज्ञानको छुआ तक नहीं, केवल स्कूल, कालेजोंकी तालीम है, जहां विनसेन्ट स्मिथ जैसे विचारोंके लेखकोंने वेदकी ऋचाओंको गडरियोंके ग्राम्य-गीत बताया है, ऐसे सैकड़ों

विदेशी लेखक हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृतिको मिटानेमें अपनी कलम तोड़ दी है। उन पुस्तकोंको पढ़कर हमारे बालक, युवक, युवतियां अपनी प्राचीन संस्कृति सभ्यता और धर्म्मसे दिन-प्रतिदिन विमुख होते जा रहे हैं। जब पढ़े-लिखे लोगोंकी यह दशा हो गई, तो इनका असर ग्रामीण लोगोंपर भी पड़ा, जिससे देहातोंमें धर्म-कर्म, इमान्दारी उठकर तरह-तरहके दोष फैल गये हैं। जहां जरा भी खाने-पीने लायक कोई बना, झूठ बोलने और शराब पीनेका अड्डा उसका घर बन जाता है। मुकद्दमेबाजी और वैर-विरोध, लड़ाई सिखानेके काममें मास्टरोंसे भी चार कदम आगे बढ़ता है। एक दूसरेको तकलीफ देना, नुकसान पहुंचाना ही बड़प्पनका काम हो गया है। कोई ऐसा स्थान नहीं रहा, जहां धार्मिक नातेसे शत्रु-मित्र एक स्थान पर बैठ सकें, न कोई मन्दिर न कोई शिवालय, न कोई महात्मा, पण्डित पूज्य ऐसा रहा है, जहाँ धर्मके नामसे सभी—जमा हो सकें। धर्म शब्द पर भी बड़ी लड़ाई लड़ी जा रही है। कोई कहता है सनातनी पोप बदमाश, कोई कहता है आर्यसमाजी गुण्डे। कितने दुःखकी बात है, न कथा है, न सत्संग है, न राम है, न कृष्ण है, न अग्निहोत्र है, न वेदका स्वाध्याय है, न संध्या है। ऐसी अवस्थामें इन हिन्दुओंसे मुसलमान हजार दर्जे अच्छे हैं, जो उस परमात्मा पर भरोसा (एतकाद) रखते हैं और खुदाकी बंदगी करते हैं, रोजे रखते हैं। बड़ेसे बड़ा और छोटेसे छोटा ईदकी नमाज पढ़ता है, जुम्मेकी नमाज कचहरीमेंसे भी सरकारी काम छोड़कर पढ़ते हैं। क्या शकूक और शंकायें मुसलमानोंके धर्म पर अङ्गरेज लेखकोंने

नहीं की हैं, लेकिन वह अपने धार्मिक विश्वासमें ढीलापन नहीं आने देते हैं। यही वजह है कि कुछ बातोंमें हिन्दुओंसे मुसलमान अच्छे हैं। इसलिये हिन्दू जातिमें, इस समय धार्मिक भावोंके प्रचारकी आवश्यकता है और इसीसे सभी मतके हिन्दुओंका संगठन हो सकेगा। आर्य समाज और सनातन धर्मको लेकर व्यर्थका कलह नहीं होना चाहिये। इन दोनोंमें बहुत कम अन्तर है, जैसा कि हमारे इस निबंधमें विवादास्पद विषयोंके पढ़नेसे ज्ञात होगा। आत्म-विज्ञान मंडलकी शिक्षा है कि हिन्दू आदर्शोंका पूर्ण रूपसे प्रचार हो, पारस्परिक सद्भावना और प्रेम बढ़े।

आत्म-विज्ञान मंडलके उद्देश्य ये हैं—

(१) परस्परमें सद्भाव प्रेम स्थापन करना।

(२) किसी साम्प्रदायिक विषयमें व्यर्थ वादानुवाद न करना।

(३) सहिष्णुता, क्षमा, अस्तेय, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, अक्रोध, अहिंसा आदि सार्वभौम हिन्दू धर्मके दश नियमोंका पालन करना।

(४) ईश्वर पर विश्वास रखना और अपने विश्वासानुसार ईश्वरोपासना करना।

(५) आत्म विज्ञान मंडलके कार्यकर्ता त्यागपरायण होंगे, किसीसे अपने लिये कभी किसी रूपमें याचना या चंदा न करेंगे। "जगद्धिताय कृष्णाय" के लक्ष्यपर अर्थात् जगत्‌हित और धर्महितके लिये कार्य करेंगे। आत्म-

विज्ञानका कार्य वर्तमान अवस्थामें यह सोचा गया है कि हिन्दुओंमें सभी सम्प्रदायोंके लोग अधिक संख्यामें ईश्वरके विमुख होते जा रहे हैं, उनमें ईश्वर-भक्तिके भावोंको व्याख्यान, कथा, उपदेशों, सत्संगों द्वारा जागृत किया जावे और धर्मपरायण सद्गृहस्थ बनानेकी चेष्टा की जावे।

देहातमें आत्म-विज्ञान मंडलके प्रचारक पंडित, दंडी स्वामी महात्मा लोग स्थान-स्थान पर समय-समयमें घूमेंगे। सदाचारकी धर्मकी शिक्षा देंगे और संस्कारोंका प्रचार करेंगे। द्विजातिमें जो यज्ञोपवीत-संस्कारका अभाव हो रहा है, इसको दूर करनेमें पूर्ण यत्न सबको करना चाहिये। आत्म-विज्ञान मंडलकी तरफसे सब खर्च यज्ञोपवीत-संस्कारका दिया जावेगा। किसी जनेऊ लेनेवालेसे कोई दक्षिणा, भेंट, पूजा या झोलीके रूपमें नहीं ली जायगी। यह वैदिक पद्धतिके प्रचारके लिये नितान्त आवश्यक है। किसीको किसी भी धार्मिक, पारमार्थिक कार्यमें सहायताकी आवश्यकता हो, वह आत्म-विज्ञान मंडल श्री हरियाणा शेखावाटी ब्रह्मचार्याश्रम भिवानी जिला हिसारसे पत्र व्यवहार करें।

भिवानी (हिसार)
ता० १७ जुलाई, १९४५

श्रीदत्त शर्मा
(रायबहादुर)
रिटायर्ड, सबजज व मजिस्ट्रेट भिवानी

श्री हरि:शरणम्

सर्वधर्म समन्वय

देशकी उन्नति भारतीय संस्कृतिसे होगी

इस समय इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि सब धर्मोंके अनुयायियोंको एक वेदी—एक स्थानपर बैठनेका सुयोग उपस्थित किया जावे, और अनेक मतावलम्बी लोग परस्परमें मिलकर एक दूसरेके दुःखसे दुखी और सुखसे सुखी होना सीखें। इस प्रकारके प्रेममय जीवन बनानेके लिये किन बातोंकी आवश्यकता है, वह इस छोटेसे निबन्ध द्वारा हम पाठकोंको बताना चाहते हैं कि धर्म (मज़हब) के नामपर जो वाद-विवाद, कलह, और अशान्ति है, वह एक प्रकारसे घृणित भावना है। वास्तवमें ईश्वर, परमात्मा, राम, कृष्ण, खुदा, अल्ला, गॉड, चाहे जिस नामसे भी पुकारें वह एक है, और सारे संसारके कण, कण, (ज़र्रे ज़र्रे) में व्यापक है। यह संसार उसीका बनाया हुआ है। हम सब संसारी जीव उस परमात्माकी सन्तान हैं।

उस परमात्माके बनाए हुए सूर्य, चन्द्रमा, हम सबको एकही प्रकारकी रोशनी देते हैं। सूर्यका प्रकाश, चन्द्रमाकी शीतलता, सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, पारसी समीपर

एकसा पड़ती है। इसी प्रकार अग्निकी ऊष्मा, जलकी शीतलतामें भी किसी जातिके लिये कोई अन्तर नहीं है। परमात्मा ईश्वर आनन्दस्वरूप हैं, और उनका नाम ही सच्चिदानन्द है। उनके यथार्थ स्वरूपको न समझनेके कारण ही एक दूसरेके प्रति घृणा, द्वेष, मत्सरता आदि हैं। उपासनाके जो प्रकार और भेद समय और देशकालकी जरूरतके अनुसार उस समयके महात्मा और विद्वानोंने बनाये हैं, जिनको लेकर साधारण जन समुदायमें नाना प्रकारके कलह और झगड़े दिखाई देते हैं, जैसे श्राद्ध, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, निराकार साकार भेद, द्वैत, अद्वैत, मृत संस्कार, जहाद, पशुबलि, कुर्बानी, भाषा-विभेद आदि जो कुछ भी हैं और विवादका स्थल बने हुए हैं, वे सब बड़ी छोटी-छोटी बातें हैं। जिनपर हम आगे एक-एक पर पृथक्-पृथक प्रकाश डालेंगे। जिससे पाठक हमारे सर्वधर्म समन्वयकी विचार-पद्धतिपर ध्यान देंगे, तो वह अपने देश व धर्मकी उन्नतिमें बहुत कुछ लाभ पहुँचा सकेंगे।

समय हमेशा परिवर्तनशील है और हम प्रतिदिनके अनुभवमें देखते हैं प्रातःकाल कुछ और है, दोपहरमे कुछ और, सायंकाल कुछ और है। फाल्गुन मास और ज्येष्ठ मासमें भी बड़ा अन्तर पाते हैं और उसके अनुकूल ही हमेशा चलना पड़ता है, फिर इस धर्मके विषयपर व्यर्थ विवाद क्यों ?

ईश्वर सर्वव्यापक है यह सिद्धान्त क़रीव-क़रीव सभी धर्माचार्योंने स्वीकार किया है, और यह भी सर्वसम्मत है कि किसीको भी हमसे कष्ट या तकलीफ न हो। परमात्माकी सृष्टिकी प्रेमसे सेवा

करके उस परमात्माको प्रसन्न करें, किन्तु अब प्रत्यक्षमें ये बातें सिर्फ कहने मात्रकी हैं, इनपर आचरण नहीं किया जाता है। इस समय संसारमें व्यक्तिरूपसे या सामूहिकरूपसे या जातीयताके नाम पर या देशोन्नति या देशभक्तिके आधारपर जो आपा-धापी, मारपीट, लूट-खसोट, मच रही है, उससे संसारकी शान्ति लाखों मील दूर चली गई है। अब लार्ड वेवल वर्तमान वायसरायने २५ जून १९४५ को जो शिमलेमें नेताओंको बुलाकर स्वराज्यके प्रश्नपर विचार विनिमय किया है और नेताओंने कहीं मुसलमान, कहीं हिन्दू, कहीं सिक्ख और अन्त्यजोंके प्रश्नोंपर बहस की है और अलग-अलग प्रतिनिधित्व स्थापना पर जोर दिया है, क्या इस आने वाले स्वराज्यसे शान्तिके पथका प्रदर्शन होगा ?

जिस भारत वसुन्धरामें वेदानुसार भगवान्के अङ्गसे पैदा हुए चारों वर्ण एक दूसरेका भ्रातृत्वका नाता बताते हैं, और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का जहाँ सिद्धान्त माना जाता था, वहाँ आज हमारे देशके नेता जाति-जाति कौम-कौम के नामपर हकूकों (अधिकारों) का बँटवारा करके शान्तिका दावा करते हैं, और ऐसे स्वराज्यसे देशको सुखी बनाना चाहते हैं। सम्भव है कि कुछ आदमियोंको अच्छी रोटी और अच्छे कपड़े मिल सकें और जहाँ अब अँग्रेज है, वहाँ एक टोपधारी हिन्दुस्तानी होजायगा। कुछ समय बूढ़े महात्मा गान्धीजीके जीवनकालमें शर्मा-शर्मी (लिहाज़ा लिहाजी, टोपी पहनने वाले भी मिल सकें। पर अन्तमें वही ढाकके तीन पात होंगे और यह स्वराज्य तितर-बितर होकर देशव्यापी कलहका महान् कारण बनेगा।

यहाँपर स्वराज्यसे आनेवाली भयानक अशान्तिका वर्णन करके स्वराज्य सुखके लोलुपोंकी मनोवृत्ति पर ठेस पहुँचाना नहीं चाहता हूँ और मैं अपने उसी अध्यात्मिक विषय पर आता हूँ।

यदि हम अध्यात्मिक उन्नतिको साथ लेकर स्वराज्य स्थापित करेंगे, तो वास्तवमें देशका कल्याण हो सकेगा। जबतक हमारे भावोंमें विश्वकल्याणकी भावनाएँ जागृत न होंगी, तबतक शाँति और सुख प्राप्त करना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है।

वर्तमान संसारके सभी मनुष्योंने धनको ही आदर्श मान लिया है। यहाँतक की लीडर महात्मा त्यागी भी उसी धनराशिमें लिपायमान रहते हैं और धनको ही सुखका साधन मानते हैं और धनादि कुछ समयतक शारीरिक सुखके साधक हो भी सकते हैं। किन्तु सच्ची शान्ति केवल धनसे नहीं प्राप्त हो सकती।

उपनिषद् कहते हैं "न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः" यदि धन और शक्ति ही सार हो तो राजा रामचन्द्रजी वनको न जाते। राजा वली सारी सम्पत्ति और भूमिका दान न करते, ऐसे सैकड़ों हजारों उदाहरण श्रीमद्भागवत, रामायण, महाभारत, पुराणाणोंमें भरे पड़े हैं, जहाँ धनको तृणवत् मानकर और राज्य आदि छोड़कर शान्ति और आनन्दकी तलाशमें घरसे वाहर निकलते हैं।

वर्त्तमान समयमें भी समर्थ रामदास, रामकृष्ण परमहँस, तैलङ्ग स्वामी, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि महात्माओंने धनादि-की तलाश न करके शान्तिको ही तलाश किया है।

अब श्री पूज्यवाद अनन्त श्री विभूषित श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य महाराज श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी ज्योतिष्पीठाधीश्वर, बदरिकाश्रम और श्री स्वामी हरिहरानन्द करपात्रीजी महाराज तथा स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम, जो प्रत्यक्ष त्याग और तपकी मूर्ति हैं, धनादिको छोड़कर उसी परमशान्तिके मार्गका अनुशीलन कर रहे हैं। साँसारिक उन्नतिके मार्गमें यदि धनके साथ शान्तिका साधन प्राप्त नहीं किया गया, तो वह धन सुख देनेके स्थानमें दुःखदायक होगा। जिस धनके पीछे हम रात-दिन :मारे-मारे फिरते हैं और उसकी प्राप्तिके लिए अनेक प्रकारके अत्यचार, पापाचार करते हैं; भाई भाईका गला काटता है (यहाँ तक कि) पुत्र पितासे लड़ता है, माता-पिताकी हत्यातक धनके कारण कई स्थानोंमें हुई है, उस धनसे मृत्युके समय, मृत्युके बाद क्या सहायता मिलती है? यहाँपर शाहे सिकन्दर व बादशाह महमूदका जिक्र करना अनुचित न होगा जो मरते समय अपनी सम्पत्ति व विभूतिको देखकर रोते रहे। और सिकन्दरने कहा है कि सारी दुनियाँको फतह करने वाला मैं खाली हाथ जा रहा हूँ! हमने स्वयं ऐसे बहुतसे धनिकोंको मरणान्त समयमें चीखते चिल्लाते देखा है और उनके धनके मोहके कारण उनके प्राण बड़ी कठीनतासे निकले हैं। उस समय किसी कविकी यह उक्ति—

"दारा इमा मे धनदा इमा मे गृहा इमा मे पशवश्च मे मे।
इतीरियन्नेक समो मनुष्यः मेमेकरः कालव्रिकेण नीतः॥"

प्रत्यक्ष चरितार्थ होती है कि हाय! यह मेरा धन, यह मेरी स्त्री, यह मेरे मकानात, आलीशान बिल्डिगें, यह मेरे हाथी घोड़े, यह मेरी

मोटर, रेडियो, कल-कारखाने आदिका प्रलाप करते हुए वह (प्रत्यक्ष) कालके द्वारा खींचा जाकर यम मार्गका पथिक वन जाता है। उस समय कोई वस्तु उसके साथ नही जा सकती, बल्कि जिस देहको पुष्टिके अनेक खाद्य-साधन सामग्रीसे पुष्ट किया था, वह यहाँ ही रह जाता है। भाई-वन्धु मित्र नाती सभी खड़े-खड़े देखते रहते हैं और बड़े-वड़े डाक्टर वैद्य-हकीम अपनासा मुंह वनाकर चल देते हैं। महाभारतमें कहा है। :—

"धनानि भूमौ पशवश्चगोष्ठे भार्या गृहद्वारि जनःश्मशाने।
देहश्चितायाँ परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥"

अर्थात् धनादिक सभी जहाँके तहाँ ही रहते हैं, स्त्री घरके द्वार-तक, भाई-वन्धु पुत्रादि श्मशानतक और यह शरीर चितातक जाता है। बाकी यह जीव अपने शुभ-अशुभ कर्मोंकी गाँठके साथ बंधा हुआ अकेला ज़ाता है।

अब यह बात कि धनका सदुपयोग क्या है और किस प्रकारसे शास्त्रोंमें बताया है, वह धर्मशास्त्रोंमें पुण्य दानादिके लिए दशमांश द्रव्य निकालना तो निश्चित रूपसे कहा गया है। इसके अतिरिक्त श्रुतिने उपनिषदोंमें कहा है :—

ॐ ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किंचिज्जगत्याँ जगत् तेन त्यक्तेन भुंजीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम्।

इस उपनिषद्के पहले वाक्यका अर्थ यह है कि यह संसार ईश्वर रूपी पटपर एक चित्र है। या यों समझना चाहिए कि जो कुछ भी हो संसार दृष्टि-गोचर है, इसमें ईश्वर सर्वव्यापक है अर्थात् सब

जगह विराजमान है और यह जगत् नाशवान् है। जब यह भावना आ जाती है कि :—

"ब्रह्मैवेदं सर्वम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म" तो फिर वैरभाव विरोध ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, मत्सरता और लोभ मोह रागादिकी निवृत्ति स्वतः हो जाती है। इस उच्चभावके आनेपर तो किसी प्रकारका झगड़ा बाकी नहीं रहता है। लेकिन यह सर्वोच्च कोटिका विषय है, तो आज-कलके समयमें समझमें आना भी कठिन है, इस प्रकारका आचरण होना तो असम्भव-सा हो रहा है। यह कालकी महिमा है। दूसरा वाक्य है :—

"त्येन त्यक्तेन भुंजीथाः"—इस वाक्यके द्वारा धनका सदुपयोग ऐसे मार्मिक-भावमें प्रकट किया है कि उन सँसारकी भोग्य वस्तुओंको भोगो, किन्तु त्यागपूर्वक अर्थात् जितनी आवश्यकता है, उसको भोगो-बाकी दूसरोंके लिए छोड़ दो। यदि किसी दूसरेकी आवश्यकता हमसे अधिक तीव्रतर है, तो अपनी आवश्यकताको तिलाञ्जलि देकर दूसरेकी आवश्यकताको पूर्ण करो। यदि भाग्यवशात् हमको हमारी आवश्यकताओंसे अधिक धनादिक ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है, तो हमको चाहिए कि अपनी आवश्यकताके अनुसार द्रव्य सामग्री रखकर हम बाकी दूसरोंकी सेवाके लिए अर्पण कर दें।

यहाँपर आवश्यकता शब्दकी व्याख्या कर देना और उसपर प्रकाश डालना भी बहुत आवश्यक है। आज-कलके (समयमें) सभ्य शिक्षित कहलाने वाले लोगोंकी आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। एक बारका जिक्र है कि मैं लाहौर ट्रेनसे चला। उसमें एक सीट पर मेरे सामने

एक जण्टिलमैन महाशय बैठे थे। उनके नौकरने बढ़िया तीन जूते बाकायदा उनकी सीटके नीचे रख दिये। एक जूता ऐसा था, जब पेशाब करने जाते थे, तब पहिनते थे। एकसे प्लेटफार्मपर टहलते थे। एक उस समय पहना जावेगा, जब गाड़ीसे उतरेंगे। भटिंडातक उन्होंने छ सिगार पी डाले। जिनकी कीमत ६) थी। ।=) बोतल लिमूनेड ॥।) की चाय २॥=) का रातका खना। चार बजे शामसे रातके ९-बजेतक =) के पान, और कमसे कम हाथ धोनेमें =) साबुन भी खर्च किया। ३।४ बार कंघा किया, बालोंकी मरोड़-तरोड़ की। मैं भी यह सब कुछ देखता चला आ रहा था। आपसमें एक दूसरेसे कोई बात-चीत नहीं हुई। क्योंकि जंटिलमैंन सहेब समझते थे कि यह सैकेण्ड क्लासमें अशिक्षित कहाँसे आ गया। क्योंकि मेरे नामके साथ, मेरी सीट भी रिजर्व थी तो वह नीचे उतरे और जब देखा कि "राय बहादुर मैजिस्ट्रेट हैं—" तो फिर आकर बोले "जनाब कुछ खायें पीयेंगे नहीं ?" मैंने हँसकर उत्तर दिया कि "जनाबमन ! हम भी आप लोगोंकी तरह खाने-पीने लग जावेंगे तो यह गरीब देश भूखा मर जावेगा।" तब वह खूब हँसे और बोले—"जनाब माफ करना आप जैसे दकियानूसी खयालके लोगोंने ही हिन्दुस्तानको रसातलमें पहुँचा दिया है। हिंदुस्तानकी तरक्कीमें आप लोग हारिज हैं।"

खैर, किस्सा लम्बा है। खूब बात-चीत होती रही। उन्होंने बताया कि ३०) रुपये रोजाका खर्च मेरा अकेलाका है। जब मैंने कहा कि आपकी आमदनी क्या है, तो बताया कि ११००) महीना। फिर मैंने

कहा कि घरवालोंके लिए क्या है ? तब जवाब दिया तङ्गीसे ही गुजारा हो जाता है।

इस कहानीको बन्द करते हुए यह बताना जरूरी है कि इस प्रकारकी आवश्यकताएँ हमारी आवश्यकताओंमें शामिल नहीं हैं। यह आवश्यकताएँ नहीं। यह राक्षसी मनोवृत्ति है और इस प्रकारका आचरण धनका दुरुपयोग है।

जहाँ हमारा उद्देश्य दूसरोंकी सेवाका है, तो हमारी आवश्यकताएँ कमसे कम होनी चाहिएं। जब हमारा ध्येय ही परोपकारके लिये है, तो सारा संसार हमारा प्रेमी होगा। हम संसारके प्रेमी होंगे। हम यहांपर जिस नाशवान् द्रव्यको जमा करनेमें जो शक्ति लगाकर मस्तिष्क विकृत करते हैं, उसकी जगह हमें बड़े विपुल धनकी प्राप्ति हो जायगी। या यों कहिए कि उस दबे हुए खजानेकी चाबी हाथ आ जायगी जो कभी नाश न होगा और हमेशा साथ चलेगा। और यह मन बहिर्मुख न रहकर अन्तर्मुखी हो जायगा। जिससे ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति हो जायगी। उस अवस्थामें आप बड़ेसे बड़े बलवान्, बड़ेसे बड़े धनवान् और पूर्ण सुखी होंगे। कोई राजा, कोई धनी, कोई शक्तिशाली किसी प्रकारका भी कोई कष्ट न दे सकेगा। पूर्ण स्वतन्त्रता और पूर्ण शान्तिका साम्राज्य आपके हृदयमें होगा।

और संसारकी विभूतिका कोई महत्त्व न रहेगा। जैसा कविने कहा है :—

"गोधन गजधन वाजिधन और धन अनधान।
जब आया सन्तोष धन सब धन धूलि समान॥"

जबतक इस प्रकारकी शान्ति न हो कोई राज्य या स्वराज्य स्वतन्त्रताका दावेदार नहीं हो सकता। भारत देश भारतीय संस्कृतिसे ही सुखी होगा और सब उपाय विडम्बना मात्र हैं।

ईश्वरीय नियमोंका उल्लंघन ईश्वरद्रोह है

ऊपर हमने सच्ची शान्तिको ही स्वतन्त्रताका द्वार सिद्ध किया है। अब आगे प्रकृत विषय जो आत्मविज्ञान मण्डलका ध्येय है, उस पर पाठकोंका ध्यान दिलाना चाहते हैं। जहाँ आत्मविज्ञान है, वहाँ किसी प्रकारका वितंडावाद नहीं है। वितंडावाद और झगड़े होशियार चालाक स्वार्थमूलक विचारोंके लोगोंने पैदा किए हैं। चलते-पुर्जे लीडर नेता, हाकिम, पण्डित, मौलवी आदि अपनी स्वार्थ सिद्धिके लिए सीधे-सादे सरल प्रकृतिके लोगोंमें प्रचार करते हैं कि अमुक जातिसे ब्राह्मणोंको खतरा है, अमुकसे वैश्योंको, वैश्योंने जाटोंको लूट लिया, हिन्दुओंको मुसलमानोंने। इस प्रकार उत्तेजित करके विना किसी स्कूल कालेजसे मिलनेवाले सार्टीफिकेटको प्राप्त करके नेता हो जाते हैं। इसी तरह सभ्यता, संस्कृति, व धर्म, सम्प्रदायके खतरेकी दुहाई देकर एक दूसरेसे घृणाके भाव बना देते हैं और फिर लड़ाई झगड़े खून-खराबी होती हैं।

समझदार मनुष्योंको चाहिए कि ऐसे नेता और स्वार्थी धर्माध्यक्षोंसे बचें और भोले-भाले लोगोंको भी बचावें, क्योंकि प्रेमसे प्रेम बढ़ता है। हृदयका साक्षी हृदय है।

जब तुम किसीसे प्रेम करोगे तो वह भी प्रेम करेगा। सुननेमें आया है कि सिंहादिक हिंसक जानवर भी प्रेमी हृदय वाले मनुष्योंपर आघात नहीं करते और आँखें मिलाकर पाससे चले जाते हैं। किन्तु हमारे इन कट्टरपन्थी लोगोंसे तो वे पशु भी अच्छे हैं। जो पुरुष धर्म और वेद शास्त्रको बिना पढ़े सुने ही सम्प्रदायके नशेमें इस प्रकार अंधे हो गए हैं कि दूसरेके गुणोंको अवगुण समझते हैं। अपठित सम्प्रदायवादीका हृदय इतना संकुचित हो जाता है कि वह सिवाय अपने सम्प्रदायके नेताओं और अपने मन्तव्योंके किसी और विषयको समझना नहीं चाहते और उनके हृदयमें जरा भी सहनशीलता (Toleration) नहीं रहती।

धर्मके दस लक्षणोंमेंसे धृति, क्षमा, अस्तेय आदिमेंसे धृतिको तो फौरन ही तिलाँजलि दे बैठते हैं और विवादका स्थल बनाकर लड़ते हैं। वास्तवमें धर्माचरणसे दूर रहते हैं। कितने आर्यसमाजी हैं जो दोनों समय अग्निहोत्र, सन्ध्या करते हैं और वेदका स्वाध्याय करते हैं ?

कौनसे सनातन धर्मी हैं जो प्रतिदिन मंदिर जाते हैं, कथा सुनते हैं, संध्या करते हैं बल्कि यों कहना चाहिए कि पढ़े लिखे ब्राह्मण भी बड़ी संख्यामें ऐसे पाये जाते हैं, जो वहाँ संध्या करते हैं जहाँ उसके दिखानेसे कोई लाभकी आशा हो।

वहुत जगह ग्रामोंमें देखनेमें आया है कि बूढ़े होकर ब्राह्मण मृत्युको भी पहुँच गए, पर उनका उपनयन संस्कार तक नहीं हुआ ! यह है धर्म और वेदकी दोहाई देनेवालोंका दशा !!

मैं अपने थोड़ेसे अनुभवसे कहनेका साहस करता हूँ कि हिन्दु जाति प्रतिदिन धर्मसे, ईश्वरसे विमुख होती जा रही है और इसके भयङ्कर परिणामकी तरफ किसीने दृष्टि नहीं डाली है कि भविष्यमें इस सर्वमान्य हिन्दुजातिकी क्या दशा होगी ? इस लिए विचारवान् पुरुषों-का कर्त्तव्य है कि वे अब अपने-अपने धार्मिक विश्वासके अनुसार ईश्वरभक्त वनें और बनावें।

आज-कलकी ऊपरकी दशाको देखकर वहुतसे कहते हैं कि कलिकाल है ऐसा ही भगवान्‌को मंजूर है। भवितव्यको कौन टाल सकता है ?

ठीक है, यह युक्ति यदि ठीक मानी जावे तो कोई जिम्मेवारी किसीकी नहीं रहती है। अब देख रहे हैं एक जाति दूसरी जातिको कुचलनेमें ही अपना वल, अपनी विद्या और विज्ञानकी सारी शक्ति लगा रही है और कमजोरोंको नाना प्रकारके कष्ट दे रही है। उन वलवान् लोगोंका सिद्धान्त है कि कमजोरको संसारमें जीनेका कोई अधिकार नहीं है। छोटी मछली वड़े मच्छका भक्ष्य होती ही है। इसी बातको—मन्तव्यको स्वीकृत करके एक जातिने दूसरी जातिपर या मुल्कोंपर चढ़ाइयाँ की हैं। वहाँके रहने वाले वाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, घासकी तरहसे काट डाले गए और उनकी धन-दौलत, माल व अस-बाव मकान लूट लिए गए और अग्निदेवके हवाले करके भस्मीभूत

कर दिए गए। हजारों बच्चे उनके माता-पितासे पृथक् कर दिये गए। इसी प्रकार स्त्री, बच्चे अपने कुटुम्बसे अलग करके गुलाम बना लिये गए। लाखों मनुष्योंको कतले-आम करके खूनकी नदियाँ बहाकर अपनी राक्षसी अहंकारकी तृष्णाको तृप्त किया गया है।

अभी इस वर्तमान समयमें इस जर्मन और मित्रराष्ट्रोंकी लड़ाईमें किस प्रकार जहरीले बमों द्वारा निरपराध मनुष्य, पशु, पक्षी, सभी की हत्या की गई। यह है बीसवीं शताब्दीके सभ्य कहलाने वाले लोगोंका आचरण! जिसको देखकर पिछले जमानेके राक्षस भी घबड़ा गये और शर्माकर हार मान गये और बोले कि :—

"भाई सभ्य हो और पूर्ण सभ्य हो। हम भी अब जन्म लेना चाहते थे, परन्तु अब भगवान्से प्रार्थना कर रहे हैं कि कमसे कम इस नवीव सभ्यताके जमाने (युग) में तो संसारमें न भेजें। इस नूतन सभ्यताने तो मनुष्योंको मनुष्यत्वसे गिराकर पतित बना दिया है।"

इसी तरह धर्मान्ध लोगोंने भी मन्दिर, शिवालयोंकी मूर्तियें उखाड़ कर फेंक दीं और वेद शास्त्रोंको जला डाला। अब इन सब बुरे आचरणोंकी जिम्मेवारी भवितव्यता पर या ईश्वर पर है, ऐसा मानने वाले लोगोंकी यह दलील है कि जब कोई जाति या देश धर्मसे गिरता है, तो उसको दण्ड देनेके लिये भगवान् किसी दूसरी जातिको या दूसरे धर्माचार्यको प्रेरित करता है, उनका ख्याल है कि आक्रमण, लूट-मार, आपाधापी, सारी जातिके पापका फल है। इसलिये आक्रमण करनेवाली और आक्रमण सहनेवाली दोनों ही बेकसूर हैं।

उनके विचारमें मन्दिर शिवालयोंकी मूर्तियें नष्ट-भ्रष्ट करनेमें भी कोई अपराध नहीं है।

हम इन विचारोंसे सहमत नहीं हैं। क्योंकि आक्रमण करनेवाली जाति का पाप ही इतना बढ़ गया हो कि वह दूसरी बेकसूर जातिपर आक्रमण करे और लूट मार करे, तो ऐसी अवस्थामें अपराधी और जिम्मेवार आक्रमण करने वाली जाति ही ठहराई जावेगी।

एक कहावत है कि किसी रास्तेमें दो आदमी परस्पर लड़ रहे थे वहाँ कोई साधु आ गया। दोनोंको छुड़ाने लगा। लेकिन वे योधावेश में (गुस्सेके नशेमें) अन्धे हो चुके थे। दोनों ही साधुको मारने लगे कि हमें क्यों छुड़ाता है। नतीजा यह हुआ कि साधु बुरी तरहसे जख्मी होकर गिर पड़ा। बादमें यह दोनों लड़ाके अपने-अपने घर गए तो दोनोंने ही अपने-अपने घरवालोंसे कहा कि मैं तो उसका कचूमर निकालता, लेकिन एक नालायक साधुने बीचमें पड़कर लड़ाईका नाश कर दिया।

दोनोंके रिश्तेदार आए कि इस नालायकने हमारे भाईको पिट दिया, नहीं तो वह नहीं पिटता।

दो दो लकड़ी और जमा गए। वेचारा साधु मर गया। मुकद्दमा चला और दोनों लड़नेवालोंको और उनके रिश्तेदारोंको फाँसी की सजा हुई।

अगर भावी मानकर कहा जावे कि साधुकी मौत इसी प्रकार थी और ईश्वरको यही मन्जूर था तो बस फिर दुनियाँका इन्त-ज़ाम और धर्म सब एक ही वार खतम हो जाता है। न कोई अपरा

है और न कोई सज़ा (दण्ड) है। किसीका कोई उत्तरदायित्व ही नहीं रहता। जिस अध्यापकके लड़के फेल हो जायें वह कह सकता है कि महाराज ! मैं क्या करूँ, ईश्वरको ऐसा ही मन्जूर (स्वीकार) था। डाकू धन लूटकर ले जावें और पकड़े जाने पर कहें कि हमारा क्या कसूर है, ईश्वरको यही मन्जूर था।

सारे ड्राइवर (Drivers) रेलोंको लड़ाकर कह दें कि हमारा क्या ससूर है, ईश्वर को यही मन्जूर था, ऐसा ही होना था। इसलिए ऐसे अपराधोंकी जिम्मेदारी जातियोंपर या व्यक्तियों पर ही रहती है। साथ ही हम यह भी कहते हैं कि साधारण बातोंमें और व्यवहारमें सर्वथा ऐसा नहीं करना चाहिए कि जो कुछ हो रहा है या होता है या होगा ईश्वरेच्छासे ही होता है। क्योंकि ऐसा माननेसे मनुष्यको कर्म करनेमें स्वतन्त्रता नहीं रहती। कर्ममें स्वतन्त्र न रहनेसे यह फल भोक्ता भी नहीं ठहरता। यह जो ईश्वर सम्बन्धी उच्चादर्श है, यह उन महात्माओंको सजता है, जिनकी क्रियाएँ सब ही ईश्वरार्पण हैं और वह स्वयं भी तन्मय हो चुके हैं। उनके अतिरिक्त साँसारिक जुआचोरोंके लिये नहीं है।

भवितव्यता और ईश्वरका ऐसें मौकों पर सहारा नहीं लिया जा सकता है। परमात्माने सभी जीवोंको कर्मानुसार उनको अधिकार दिया है। प्रत्येक जाति ईश्वर-रचित है और ईश्वर रक्षित है। ईश्वर ही सबका अधिष्ठाता है। वह सबका ही भला चाहता है। जीवोंको कर्मानुसार जीवन वितानेकी सामग्री दी है और प्रत्येक जातिको यथेच्छ कर्म करनेकी स्वतन्त्रता दी है।

हमें अपने ईश्वर विश्वासको दृढ़ बनाना चाहिए फिर कोई कठिनाई पैदा न होगी। ईश्वरके दरबारमें अन्धेर नहीं है। हमारा आपाधापी करना, दूसरोंसे द्वेष पूर्वक व्यवहार करना, हमारे ईश्वर-विश्वासकी कमीको सूचित करता है। सर्वथा प्रेमपूर्वक व्यवहार करने का अभ्यास करना चाहिए। द्वेष, कलह, लड़ाई, युद्ध, झगड़े, मुकदमे-बाजीसे दूर रहना चाहिए।

इन विचारों पर शायद यह कहा जावे कि महाभारतकी लड़ाई और गीताका उपदेश बावलोंकी तरङ्ग ही थी।

नहीं यह बात नहीं है। यदि एक जाति या कोई व्यक्ति दूसरी जातिका या दूसरे व्यक्ति या समाजको जो धर्मानुकूल आचरण करता है और उसको बिना अपराध कष्ट देता है, उसके अधिकारको छीन लेता है, किसी प्रकारभी सुलह-समझौतेके लिये तैयार नहीं, तो ऐसी अवस्थामें धार्मिक कर्तव्य हो जाता है कि उस जाति या समाजको या व्यक्तिको युद्ध करके नष्ट भ्रष्ट करदें। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि:—

"धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।"

जो जाति या व्यक्ति या समाज, ईश्वरीय नियमोंका उल्लङ्घन करे वह ईश्वर-द्रोही है। उसको उचित मार्ग पर लानेके लिये जो आवश्यक हो वह करना चाहिए, ऐसा न करनेसे कर्त्तव्यपालन न करनेका दोषी बनना पड़ता है। हमारे इस लेखका अभिप्राय यह है कि मनुष्योंको उदार, शान्त विचारशील होना चाहिए। धार्मिक मामलोंमें तो व्यर्थ कलहकी समाप्तिसे ही हम उन्नत हो सकते हैं। कोई शिवपूजक, कोई

विष्णुका उपासक है, कोई निराकारका ध्यान करता है, कोई तीर्थांकरोंकी उपासना करता है, उनको जिस प्रकारसे आनन्द और शान्ति मिलती है, करने दो।

यदि तुम उसके कल्याणकी भावनासे उसको अपनी तरफ लाना चाहते हो, और तुम्हें उसका मार्ग गलत मालूम होता है तो प्रेमसे, उच्चादर्शसे समझा कर उसके हृदयपर प्रभाव डालिए। उसके इष्टको गाली देनेसे या निन्दा करनेसे तुम स्वयं पापके भागी बनते हो और व्यर्थ द्वेषकी अग्नि भड़काते हो, भगवान् कृष्णने इसी सिद्धान्तको लेकर गीतामें कहा है:—

"न बुद्धिभेदं जनयेत् अज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्"।

भगवान् शङ्कराचार्यने गलत मार्ग पर चलने वाले बौद्धोंका उद्धार किस शान्ति और प्रेमसे किया था, उस उच्चादर्शको हर समय सम्मुख रखकर धार्मिक कार्योंमें योग-दान देना चाहिए।

किसी साधारण वक्ता—उपदेशकके कहनेसे कि यह शिवालय और मन्दिर बूचड़खानेसे भी बुरे हैं, बस सुनकर जोशीले भावोंके साथ मन्दिर और शिवालयोंकी इतिश्री करना महापाप है और दूसरोंके दिलोंको ठेस पहुँचाना है। यह धर्म नहीं अधर्म है और पाप है।

हमने हिन्दू मुसलमानोंके दङ्गोंमें देखा है कि हिन्दू मस्जिदोंको और मुसलमान मन्दिरोंको नुकसान पहुंचाते हैं और आर्यसमाजी सनातनधर्मियोंके मन्दिरोंका ही विरोध करते हैं। इन सभी बातोंमें सुधारकी आवश्यकता है। वही प्रचार आत्मविज्ञान मण्डलका है।

धर्म और ईश्वर विश्वास

धर्म शब्द पाणिनीय व्याकरणकी "धृ धारणे" धातुसे बनता है जिसके अर्थ हैं—"धार्यते इति धर्मः"।

आजकलके अँग्रेजी पढ़े लिखे लोगोंने धर्मका तर्जुमा (अनुवाद) ड्यूटी (Duty) किया है । वास्तवमें ड्यूटी और धर्ममें बड़ा अन्तर है।

एक जल्लाद फाँसी देनेके काम पर नौकर है, उसकी ड्यूटी फाँसी लगाकर मार देनेकी है और किसी ऐसे कारखानेमें जहाँ पशु काटे जाते हैं। किसी (Machineman) मशीन नौकर या इञ्जीनियर (Engineer) कुछ भी कहो नौकरी मशीन चलानेकी है। चलने पर पशुओंका बलिदान हो जाता है। यह ड्यूटी है। क्या इसको धर्म कह सकते है ? नहीं।

धर्मका लक्षण मनुस्मृतिमें इस प्रकार बताया है—

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्म लक्षणम् ॥

धर्म यम नियमोंके साथ-साथ चलता है, अकेला नहीं। जैसा कि योगदर्शनमें लिखा है:—"अहिंसा सत्यास्तेय, ब्रह्मचर्य परिग्रहा यमाः शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः विवेक

विचार मुमुक्षता षट् सम्पत्तिः ।" अर्थात् शम दम, उपरति, तितिक्षा श्रद्धा समाधान है ।

धर्मका सम्बन्ध इस लोक और परलोक दोनोंसे है, ड्यूटीका सम्बन्ध केवल उस समय और इस लोकसे है। धर्मका सम्बन्ध शरीरसे अविच्छिन्न है और ड्यूटी क्षणिक है। इसलिये ड्यूटीके साथ धर्मकी तुलना नहीं हो सकती है।

धर्म जैसे सत्य बोलना, दया करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, किसीको धोखा न देना, न्याय करना, किसीपर क्रोध न करना, पवित्र आचरण रखना, ईश्वरमें विश्वास रखना, यह सभी धर्मके अङ्गभूत हैं। इसके विना कोई भी मत धार्मिक नहीं कहला सकता है।

जिन मनुष्योंका धार्मिक जीवन बनता है, उनका लक्षण यह है कि वह दूसरोंके नुकसानको, भलाई बुराईको, अपनी जैसी समझते हैं और उनकी वाह्य भिन्नता एकतामें बदल जाती है।

धर्मात्मा पुरुष सहनशील और सब प्राणियोंका हित चाहते हैं, ऐसा ही आदर्श वेदमें हैं।

"यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सित ॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानत ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्व मनुपश्यतः ॥"

धार्मिक पुरुषका ईश्वर पर दृढ़ विश्वास होता है। जहाँ सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी, अगोचर, जगन्नियन्ताको समझ लिया तो ईश्वर रचित

सृष्टिमें किसीसे द्वेष, नफ़रत, नहीं हो सकती है, वल्कि सब जगः प्रेम ही प्रेम होगा। इसी सिद्धान्तको मुसलमानोंने भी माना है।

एक मुसलमान कविने लिखा है—

"खुदाका इश्क जिसके नज़रए दिलमें जमा होगा।
तमा व हिर्सके ख़ासाक से वह दिल सफ़ा होगा।
तकब्बुर और तआस्सुवसे है उसे यक कलम नफ़रत।
ख़याले नस्फे जानां से नहीं यक दम उसे फुर्सत ॥
है उल्फत ए जाना से ज़बां पर नाम है उसका।
उमीदे वस्लमें जीना यही काम है उसका ॥"

इसी प्रकार इसामसीहने भी अपने उपदेशोंमें कहा है कि ईश्वर के दर्शनका रास्ता प्रेम है, ईश्वरकी बनाई हुई सृष्टिसे प्रेम करो। यदि पड़ोसीसे झगड़ा हो तो पहले झगड़ा मिटावो, फिर गिरजामें जाकर इबादत करो।

जब यह मान लिया गया कि यह संसार एक प्रकारसे ईश्वरका स्वरूप है, तो फिर परस्परमें भ्रातृभावसे रहना ही धर्म है। जो इस प्रकार ईश्वरमें (पर) विश्वास या प्रेम रखते हैं, वह दूसरे मनुष्योंसे घृणा नहीं करते। दूसरे सम्प्रदायों और मतोंको घृणाकी दृष्टिसे देखने वालोंसे ईश्वर बहुत दूर है। ईश्वर विश्वासके साथ संकीर्णता स्वयं ही नष्ट हो जाती है। ईश्वरको सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द आदि जो हिन्दू शास्त्रानुसार ऊपर लिखा गया है, मुसलमान भी ऐसा ही मानते हैं। उनकी पुस्तकोंसे उद्धृत है:—

१—अल-बातिन, अज—(जाहिर-अव्यक्ताव्यक्त)
२—अल-बादी, अलजामी—(स्रष्टा और संहर्त्ता)
३—अल-मुहिय्य, अलमुमीन (भवः हरः जीवनदाता, धर्ता हर्त्ता)
४—अल मुजील, अलहादी (मायावी तारकाः)
५—अल-कह्हार, अल रज्ज़ाक (रुद्रः शिवः)
६—अल-ग़फ़र—अल करीम (दयालु)
७—अल-जमील—अलजलील (शास्ता, प्रभुः सुन्दर ईश्वर)
८—कदिरे मुतलक (सर्व शक्तिमान)
९—जाते मुतलक (निर्गुण)

इसी प्रकार ईसाई मत (धर्म) मानता है:—

मुसलमान खुदाको रब्बुलालमीन अर्थात् संसारका रब है, भगवन् है, ऐसा मानते हैं और साथ ही गैर मुसलमानोंको दुनियाँसे खतम करनेकी फ़िक्रमें हैं !

इसी प्रकार हिन्दू भी मुसलमानोंको नीच और म्लेच्छ खयाल करते हैं और इनके नाशके फिक्रमें हैं ! ऐसे वे लोग हैं जो सम्प्रदायवादी हैं। फिरकेबन्द हैं, कट्टरपन्थी हैं, ऐसे लोगोंका खुदा या रामसे कोई ताल्लुक नहीं। वह तो अपना स्वार्थ सिद्ध करनेमें सब कुछ समझते हैं। अभी उस दिन १४।७।४५ का ज़िक्र है, शिमलेकी वायसरायकी कमेटी जो स्वराज्य देनेपर विचार कर रही थी, उसमें मि० जिन्नाने कहा कि पाँचों मुसलमान जो लिये जावें, मुसलिम लीगके ही नामजद होंगे। जिनको मैं नामजद करूँगा। काँग्रेसी मुसलमान

और पंजाबकी यूनियनिस्ट पार्टीका मुसलमान हो, तो मैं सहयोग नहीं करूंगा।

यदि मि० जिन्ना मुसलमानोंका भला चाहते तो कोई भीं पाँच मुसलमान हों। लेकिन ऐसा नहीं है। इसी तरह मजहब और धर्मोंके लोगोंने भाव बनाकर लोगोंको ईश्वरसे विमुख कर डाला है।

एक और बातका जिक्र करना भी इस स्थानपर उचित है कि सिक्ख और हिन्दुओंमें धार्मिक दृष्टिसे कुछ भी फरक नहीं है। गुरु-नानक साहेबको हरेक हिन्दु पूज्य और आदरणीय समझते हैं। उन्होंने समयकी आवश्यकता और देशकी अवस्थाके अनुसार "गुरु ग्रन्थ साहेब" पंजाबी जबानमें लिखा है। वह वेद, धर्म, शास्त्र, वेदान्त और पुराणोंका सार है। भक्ति रसका अमृतमय प्याला है। देश-भक्ति और धर्मपर न्योछावर बनानेके अद्भुत भावोंसे परिपूर्ण है। रामकृष्णके गुणानुवादका भण्डार है। हम कहाँतक गुरुओंकी प्रशंसा करें, उन्होंने धर्मको उस समयमें बचाकर संसारको चकित कर दिया। सभी हिन्दू उनके कृतज्ञ हैं। अब कुछ मनचले सिक्ख भाइयोंने गुरु-द्वारोंमेंसे रामकृष्णके फोटो भी उतार फेंके ! उन्हें यह भी पता नहीं कि इन कार्योंसे गुरु साहबकी आत्माको अन्य लोकोंमें भी कष्ट पहुँचेगा। यहाँपर एक मुसलमान भक्त सरमदकी शायरीका दिग्दर्शन कराना उचित है :—

जोशमें मज़हबके इन्सां भी कमीना हो गया।
इस तंग दिलीसे उन सबोंका तारीक सीना हो गया।

इस तआस्सुबकी एवजमें खो दिया ईमान को।
एक टुकड़ेके लिए तरसा दिया इन्सान को।।

अब हम अपने उसी धर्म और ईश्वर विश्वास पर आते हैं। धर्मके विना ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होती। धर्ममें नफरत (द्वेष) वैर डाह, असूया, दम्भ, अहङ्कार, पक्षपात, विषयलम्पटता, लोभ, मोह, हिंसा, क्रोधादिका संसर्ग नहीं होता है।

धर्मका तत्त्व यही है कि भगवान् ही इस संसारका रक्षक, पालक है। वही सबका पिता है। मनुष्य मात्रसे भ्रातृ-भाव और प्रेम रखते हुए धर्मानुकूल वर्ताव करे और किसी प्रकार जो कोई उपासना, जप, तप, सन्ध्या अग्निहोत्र, नमाज वन्दगी, पूर्व मुख या पश्चिम मुख, संस्कृतमें, अरबीमें, अंग्रेजीमें, मन्दिरमें या मस्जिदमें, या गुरुद्वारेमें करता है, करने दो।

नेकनीयतीसे की हुई उपासनाको भगवान् स्वीकार करता है। उसके विरोधी बनकर दिलको न दुखाओ। अपनी विद्या, बुद्धि प्रतिभा, आचरण, व्यवहार और सचाईसे प्रेमपूर्वक, अगर कोई धर्मविरुद्ध आचरण करता है, तो सुधार करनेकी चेष्टा करो।

हम यह समझते हैं कि हमारे उपरोक्त विचारोंपर पाठकोंको वड़ी शङ्काएँ होंगी और वह कहेंगे कि अब जितने भी इस संसारमें मत-मताँतर है, उनके सिद्धान्तों और मन्तव्योंमें वड़ा अन्तर है और एक दूसरेसे घोर विरोध करते हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि एक दूसरेसे उलटा हैं। जैसे एक ईश्वरको निराकार मानता है, तो दूसरा साकार। एक अवतारवादी है, दूसरा नहीं। एक मूर्ति पूजा

करता है, दूसरा खण्डन करता है। एक द्वैतवादी है, दूसरा अद्वैतवादी। एक अहिंसावादी है, दूसरा हिंसावादी। एक मूर्दोंको जलाता है, दूसरा जमीनमें गाड़ता है। ऐसी-ऐसी बहुत बातें हैं और सभी अपने धर्मको ईश्वरीय धर्म बताकर सच्चा धर्म कहते हैं। दूसरोंको धर्मका पाठ पढ़ाते हैं!

इसके अतिरिक्त खान-पान, रस्मो-रिवाजोंमें भी बड़ा अन्तर है। कोई तमाम कपड़े उतारकर चौकेमें भोजन करता है, तो कोई जूते कपड़े सहित मेजपर खाता है। देशके रस्मोरिवाज भी अलग-अलग हैं। रहन सहन, शादी, गमीके तरीके भी पृथक् हैं। इन सबमें एकता-समताका भाव 'आत्मविज्ञान मण्डल' जो पैदा करना चाहता है, यह मसखरे लोगोंका मखौल और मज़ाक़ नहीं तो क्या है?

यह सब कुछ होते हुए भी हम बड़ी दृढ़तासे कह सकते हैं कि कई एक स्थल ऐसे हैं, जहाँ एकता और समता दीखती है और कोई विरोधी नहीं है। विरोध बाहरकी, ऊपरकी बातोंमें है। मौलिक सिद्धान्तकी बातोंमें नहीं, जिनको हम अगले विषयोंमें स्पष्ट करेंगे। और कुछ उदाहरण यहाँ भी देते हैं।

कोई ग्रामवासी पुरुष किसी देहलीकी हलवाईकी दुकान पर जाता है। कहता है मिठाई लूंगा। हलवाई पूछता है, क्या मिठाई लड्डू, जलेबी, बरफी, पेड़ा, कलाकन्द, दिलखुशाल, सोहनहलवा, रसगुल्ले क्या लोगे? ग्रामीणने कहा कि मिठाई तो खुरमे ही होते हैं और उनके खानेसे पेट भर जाता है और भूख मिट जाती है।

हलवाईने कहा कि देहलीमें शक्करपारे खुरमे तो मिला ही नहीं करते। बढ़िया मिठाइयें मिलती हैं और इनसे भूख मिट जायगी। यह भी घी, मीठा आदिसे बनी है।

अच्छा ! यह सभी चीजें घी, मीठे आदिसे बनी हैं, तो देदो।

सार यह निकला कि मिठाइयों की अनेक किस्में हैं और उनके रङ्ग-रूप, स्वादमें भी फरक है। किन्तु; रङ्गरूप, बनावट अलग है, परन्तु उसके बनानेमें प्रधान मौलिक अँश घी मीठा है। भूख मिटाकर शान्ति स्थापित करनेका कार्य उसी घी मीठेका है, न कि उस गोलाईका, या लाली, या सफेदी का।

इसलिए ऊपरी भेद और विवाद एक भ्रम है और यह चक्कर ही इस दुनियाँको तङ्ग कर रहा है। इसी कारणसे मनुष्य जीवनका जो ध्येय धर्म द्वारा ईश्वर प्राप्ति है, उससे इन उपरोक्त झगड़ोंके कारण मनुष्य समाज दूर होता जा रहा है। जिस-जिस प्रकारसे यह भ्रम दूर जावेगा, हम धार्मिक होंगे, और हमारा ईश्वर विश्वास दृढ़ होगा।

ईश्वर साकार है या निराकार

ऊपर हम बता चुके हैं कि ईश्वर—परमात्माके विषयमें यदि पक्षपात छोड़ कर विचार करें, तो सब ही धर्म यह मानते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान, स्वयंभू, अजर अमर है। तो फिर निराकार, साकारका विवाद स्वतः ही नहीं

रहता। क्या किसी साकार वस्तुमें उपरोक्त गुण हो सकते हैं ? नहीं ! तो ईश्वर निराकार है।

किन्तु जो निराकार है, वह साकार भी हो सकता है। उसकी अनन्त शक्तियाँ हैं। जब हम सारे संसारमें ईश्वरकी व्यापकता मानते हैं और सृष्टिका रचने वाला मानते हैं, उसके रङ्ग-रूप जो पैदा किए हैं, ये सब साकारके चिह्न हैं।

वह भगवान् दयालु हैं। अतः जब वह अपने भक्तोंपर प्रसन्न होते हैं—

आकाररूप गुणयोग विवर्जितोऽपि
भक्तानुकम्पित निमित्त गृहीत मूर्तिः।
यःसर्वगोऽपि कृत शेष शरीरशय्यो
दृग्गोचरोऽभवतुमेऽद्य स दीनबन्धुः॥

तब देवता, ऋषि, महात्मा, पीर, पैगम्बरकी सूरतमें आकर उनकी सहायता करते हैं और सच्चा मार्ग दिखाते हैं। क्योंकि यह कठिन है कि साकार मनुष्य साधारणतासे साकारकी सहायताके विना निराकारको प्राप्त कर सके। मनुष्य साकार है, सब जानते हैं, किन्तु कोई भी किसी महात्मा विद्वान्का सत्कार करना चाहता है। महात्मा अपने शरीरमें तो है नहीं। शरीर तो यही हाड, माँस, मल, मूत्रका है। महात्मापन उसकी आत्मामें है। आत्मा निराकर है। लेकिन महात्माको प्रसन्न करनेके लिए साकार पदार्थोंका ही आश्रय लेना पड़ता है। वह फूलमालायें गलेमें डालता है, गला भी साकार पदार्थ है। अब यह यहाँ देखिए क्या हुआ ? उस पुरुषके

निराकार भावोंने साकार पुष्पमालामें प्रवेश किया। महात्माजीके साकार गलेमें माला डालकर निराकार आत्माको प्रसन्न किया। अर्थात् निराकार आत्माको प्रसन्न करनेके लिए हाथ-पैर, आदि अङ्गको धूप-दीप, आदि साकार पदार्थोंका आश्रय लेना ही पड़ता है। यह भाव ऐसे हैं कि मृतक शरीरका आत्मा जब स्थूल शरीरसे सम्बन्ध छोड़ देता है, तब भी आत्माकी प्रसन्नताके लिए मृतक शरीरको पुष्पादिसे अलंकृत करके बड़ी धूम-धामसे श्मशान भूमिमें ले जाते हैं। वहाँ वेदमन्त्रों द्वारा आत्माकी सुगतिके लिए प्रार्थना की जाती है। उनके फोटो घरमें रखते हैं और साकार करते हैं। यह बातें अच्छी हैं या बुरी इस विषयपर यहाँ कुछ नहीं लिखना है। किन्तु यहाँ यह बताना है कि ऐसे भाव सभी मनुष्योंके हैं। चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान, आर्यसमाजी हों या देवसमाजी या ईसाई कुछ भी हों; यह भाव इतना प्रबल है कि सबमें इसका प्रचलन है।

निराकारकी उपासनाका सरल मार्ग नहीं है। जैसे विद्या निराकार सत्ता है, लेकिन उसकी प्राप्ति पुस्तक, लेखनी, स्याही, कागज, साकार पदार्थोंकी सहायतासे होती है।

रेडियो ब्राडकास्ट, टाकीज़ सिनेमा आदि दृश्य और गान निराकार हैं, किस प्रकार यन्त्रोंकी सहायतासे साकारताको प्राप्त हो जाते हैं।

इस मनुष्यके मल विक्षेपादि आवरणोंसे आत्मा ढका हुआ है और अव्यक्त (निराकार) ईश्वरमें गति होनी कठिन है। इस वास्ते साधारण रूपमें व्यक्त (साकार) रूप द्वारा ही अव्यक्त निराकारको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

बृहदारण्यक उपनिषद्में लिखा है कि :—

"सयथा दुन्दुभे र्हन्यमानस्य न बाह्यान् शब्दान् शक्नुयात् ग्रहणाय, दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याँघातस्य वा शब्दो गृहीतः । स यथा शंखस्य ध्मायमानस्य न बाह्यान् शब्दान् शक्नुयात् ग्रहणाय, शखस्यतु ग्रहणेन शंखध्मस्य वा शब्दो गृहीतः । स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्यान् शब्दान् शक्नुयात् ग्रहणाय, वीणायै तु ग्रहणेन वीणा वाद्यस्य वा शब्दो गृहीतः ।"

अर्थात् हम शब्दको जो दुन्दुभि वीणा शंखसे सुनता है, उसको पकड़ नहीं सकते, क्योंकि वह सूक्ष्म है ।: लेकिन वाजों अर्थात् वाद्य-यन्त्रों द्वारा एक प्रकारसे पकड़ा जाता है। स्थूल साकारके बिना निराकारकी प्राप्ति कठिन है। यह युक्ति प्रत्यक्ष है और इससे किसी को भी इन्कार करना कठिन होगा।

भगवान् कृष्ण गीतामें कहते हैं :—

"कष्टोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम् ।
अव्यक्ताहि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।।"

इस प्रकार मनुष्यकी गति निराकार ईश्वरकी प्राप्तिमें लगाना बड़ा कठिन है। इसलिए साधारण अवस्थामें साकार रूपके द्वारा निरा-कारको प्राप्त करनेकी चेष्टा करना उचित है।

इस विषयपर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। किन्तु हमें यह छोटा-सा निबन्ध आत्म-विज्ञान-मण्डलके सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये लिखना आवश्यक है, जिसमें सभी सिद्धान्तोंका सूत्र रूपसे समा-वेश हो।

मूर्ति पूजा

मूर्ति पूजन अच्छा है या बुरा है, यह प्रश्न ऐसे लोगोंका है जो न तो मूर्तिपूजक हैं और न वह निराकारोपासना करना जानते हैं। ऐसे लोकपरायण, अर्थपरायण मनुष्योंको कभी ईश्वरोपासना-आराधनाका अवकाश ही नहीं। जब खाली हुए और कोई चर्चा चल पड़ी, तो अपनी उस साँसारिक कार्य्योंमें घिसी हुई कुण्ठित बुद्धिकी तर्क कसौटीपर ही बड़े-बड़े गहन विषयोंको रखकर निर्णयकी चेष्टा करते हैं, जो वास्तवमें न निराकारोपासक हैं न साकारोपासक। जिनके हृदयोंमें एक बार भी प्रभु भक्तिका रसास्वादन हो गया, वह इस प्रकारकी फिजूल माथा-पच्ची नही करते हैं, वह जानते हैं कि भाषा, वेष स्थान द्रव्य धन-दौलत धूप-दीप नैवेद्य फूल अक्षतादि बाहरकी चीजोंमें भक्त-की भावनायें और प्रेमकी लहरें ओत-प्रोत हैं। प्रधान विषय मानसिक वृत्तियोंकी एकाग्रतापूर्वक प्रभु चिन्तनमें व्यग्रता, आत्मविस्मरण और आत्म-समर्पण है। भक्तकी चाह, लालसा, इच्छा अपने भगवान्‌को रिझानेके लिए तरह-तरह की होती हैं, वह मूर्तियें बनाता है, वेद मन्त्रों द्वारा मूर्तिमें ईश्वरकी भावना करके प्राणप्रतिष्ठा करता है, इस तरहसे अपनी आत्माका सम्बन्ध पूजा द्वारा भगवान्‌से जोड़ता है और भगवान् प्रसन्न होते हैं, जैसा कि भगवान्‌का वाक्य है.—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेन च,
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि चार्जुन।

भगवान् स्वयम् कहते हैं कि मैं वैकुंठमें (जो भगवानका धा है) नहीं रहता हूं, न योगिजनोंके हृदयोंमें ही रहता हूं, हे अर्जुन मेरे भक्त जहां स्मरण करते हैं, वहीं मैं रहता हूं। तात्पर्य य निकला कि सच्चे हृदयकी कसक और उपासनाके लिये बाहरकी सामग्री भी सहायक है, नहीं तो इस बाहरके आड़म्बरकी क्या आवश्यकता है। जो भगवान् सारे संसारका भरण-पोषण करते हैं सूर्य्य चांदका प्रकाश उनकी आंशिक सत्ता है, उनके लिये चा अक्षत तोला भी मीठा और छोटासा दीपक क्या प्रकाश दे सकता है, विना भाव और भक्तिके वास्तवमें उपहास है।

भगवान्में विश्वास हो और श्रद्धासे जो कुछ भी अर्पण कि जावे, उसको वह ग्रहण करते हैं जैसा कि भगवान्ने गीतामें अर्प नीतिकी स्पष्ट घोषणा की है—

पत्रं पुष्पं फलंतोयं योमे भक्त्या प्रयच्छति-
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।

भगवान् कहते हैं जो भक्त प्रयतात्मा अर्थात् संयमी (य नियमोंमें बद्ध है) वह भक्तिपूर्वक जो पत्र, पुष्प, फल, जल, जो अर्पण करता है, उसको मैं ग्रहण करता हूं। इसका सबू भगवान्ने स्वयम् दिया है कि दुर्योधनके घरके नाना प्रकारके भो उत्तम व्यञ्जनोंको छोड़ कर भक्त विदुरके घरका शाक पातका भो लगाया था। अब यहां धूप दीप नैवैद्यके अर्पण करने पर जो शं हैं स्वतः निवृत्त जो जानी चाहिये। वास्तवमें जो भक्त हैं, श्रद्धालु वह इस प्रकारके निरर्थक शून्य तर्क-वितर्कसे दूर रहते हैं। उन

शुद्ध पवित्र हृदयमें इन बातोंके लिये स्थान कहां है यह देखें कि मूर्तिपूजा लाभप्रद है कि नहीं। वह तो फिर मंदिर और मसजिदमें भी भेद नहीं समझते हैं किसी शायरने कहा है कि—

हरम हो, अदीर हो, मसजिदे कालीसा या सनमखाना।
नजरवालोंको हरशयमें खुदा मालूम होता है॥

मूर्तिपूजाका सिद्धान्त—हिन्दू शास्त्रोंने जो तहकीकात ईश्वर विषयक प्रश्नको लेकर की है, उसके मुताबिक आज तक संसारमें कोई धर्म्माचार्य्य या जगत् उसका मुकाबला नहीं कर सकता है, और इसी तरह उपासना प्रार्थनाके ऐसे अनेक क्रमवद्ध विधान बनाये हैं, जिससे जैसा अधिकारी हो लाभ उठा सके। यह बात किसी हदतक स्वीकार की जा सकती है कि वेदोन्नतिके समयमें मूर्तिपूजाकी आवश्यकता न पड़ी हो, उस समय यज्ञों द्वारा देवताओं का आवाहन, देवस्तुति प्रार्थना पूजन द्वारा ईश्वरोपासना और तुष्टिका विधान रहा हो। जब मनुष्य समाज अधिक वहिंमुखी हो गया और मायाचक्रमें पड़नेसे बुद्धिमें निर्मलता न रही और सूक्ष्म साधन ईश्वरोपासनाके अधिकारी न रहे, तो धर्म्माचार्य्योंने जगत्के कल्याण के लिये मूर्तिपूजा विधानका प्रचार किया। यह मूर्तिपूजाका, प्रतीकोपासनाका विधान वेदोंमें, उपनिषदोंमें है यह कहना कि वेद-विरुद्ध है सर्वथा भूल है। साधक लोग इस तत्त्वको जानते हैं, ईश्वरोपासनाके समय मन इधर उधर दौड़ता है उसको रोकनेके लिये, मनोवृत्तियोंको भगवान्की तरफ लगानेके लिये मूर्तिपूजा जैसा और कोई सरल उपाय साधारण जनसमुदायके लिये नहीं पाया जाता है।

प्रत्येक मूर्तिपूजक मूर्तिके सम्बन्धमें यह जानता है कि यह मूर्ति पत्थरकी, लकड़ीकी, मिट्टीकी या धातुकी बनी हुई है और किसी कारीगर मनुष्यकी बनाई हुई या छड़ी छीली हुई है, किन्तु वह यह भी जानता है कि वेद-विधि द्वारा इन मूर्तियोंमें ईश्वरभाव और देवभावकी प्राण-प्रतिष्ठा की जा चुकी है और वेदमन्त्रों द्वारा यह मूर्ति ईश्वरभावका पीठयन्त्र (रेडियो) बन गया है और उस-उस देवताकी शक्तिका विकास उसमें आ जाता है, और शुद्धभाववाले उपासकको वह मूर्ति तद्रूप देवता प्रतीत होती है और उसको उसकी उपासनासे शान्ति, आनन्द और यथेच्छ लाभ होता है। उपासकमें यह शक्ति, भक्ति, श्रद्धा निष्ठा, पूजासे इस प्रकार आ जाती है, जैसे आकाशचारी शब्दको रेडियो यन्त्र पकड़ लेता है। इस रेडियोके रहस्यको प्रत्येक श्रोता नहीं समझ सकते हैं। इसी प्रकार इस सायंटिफिक उपासनाके तत्त्वको और क्रमको न समझते हुए लोग कहते हैं कि हिन्दू पत्थरपूजक हैं! कोई भी हिन्दू पाषाण मूर्तिको ईश्वर नहीं मानता है, बल्कि अपने पूज्यदेवकी शक्ति विशेषका केन्द्र या स्थान मनोवृत्ति टिकानेका साधन मानता है।

इस बातका प्रमाण प्रत्येक प्रार्थनासे जो पूजक लोग कहते हैं और सर्वव्यापकादि गुणोंको लेकर स्तवन (स्तुति) करते हैं जैसे—

भूः पादौ यस्य नाभिर्वियद सुरनिलश्चन्द्र सूर्य्यचिनेत्रे।
कर्णावाशाः शिरोद्यौर्मुखमपि दहनो यस्य वास्तव्यमब्धिः॥

अन्तस्थं यस्य विश्वं सुरनर खगगो भोजिगन्धर्व वृन्दाश्चित्रं-
रंरम्यते तं त्रिभुवन पुरुषं विष्णुमीशं नमामि ॥

अर्थ—उस विष्णु (सर्वव्यापक) भगवान्‌को नमस्कार करता हूं। भूःलोक जिसका पैर हैं, आकाश जिसकी नाभि है, वायु जिसके प्राण हैं, चाँद सूर्य्य जिसके नेत्र हैं, दिशायें जिसके कान हैं, द्युःलोक जिसका शिर है, अग्नि जिसका मुख है, आकाशस्थ जलनिधि जिसका वास्तव्य रहनेका स्थान है, यह विश्व जिसके अन्दर समाया हुआ, समस्त प्राणी, देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गादि जिसके विचित्र रूपमें रमण कर रहे हैं, ऐसे परमात्माको पुनः-पुनः प्रणाम है।

क्या ऐसी स्तुति किसी पत्थर या धातुकी मूर्तिकी हो सकती है? इस तरहके हजारों श्लोक, मन्त्र, स्तुति प्रतिदिन पढ़े जाते हैं, फिर यह कहना कि हिन्दू पाषाण-पूजक हैं, कितनी भूल है?

सभी मूर्तिपूजक हैं – जो लोग मूर्तिपूजाका खंडन करते हैं, जरा उनके भाव और कार्य्यक्रमपर दृष्टि डालनेसे पता चलेगा कि वह भी किसी न किसी प्रकारसे मूर्तिपूजा करते हैं।

हजरत मुहम्मद साहबने सबसे ज्यादा मूर्तिपूजाका खंडन किया है और मक्का शरीफके आसपासके मन्दिरोंको गिरवाया, किन्तु बादमें उनको भी मूर्तिपूजाकी जरूरत पड़ी और ख्याल हुआ कि मुसलमानोंके लिये भी कोई सार्वभौम पूजागृह (इबादतखाना) चाहिये, उन्होंने काबेको जो पहले मन्दिर था, मुसलमानोंके लिये पूजाका स्थान बनाया, जहां अब सारी दुनियाके मुसलमान हर साल

"हज्ज" करने जाते हैं, काबेकी परिक्रमा करते हैं, चश्मेज़मका जल पवित्र (पाक) समझ कर पीते हैं। सभी मुसलमान काबेकी तरफ मुंह करके नमाज पढ़ते हैं। संगे असबदको बोसा देते हैं, कुरान शरीफको बड़े आदर सत्कारसे अपने गलेमें डाले रखते हैं ताज़ियोंको मानते हैं। मुसलमान बुजर्गोंकी कब्रों पर फूल चढ़ाते हैं, चिराग जलाते हैं, पंखे चढ़ाते हैं, मिन्नतें करते हैं और मसजिद की एक-एक ईंटको पवित्र (मुतबर्रिक) समझते हैं, मसजिदोंको बैतुल्लाह (अल्लाहका घर) मानते हैं, झण्डोंपर चाँद और तारेक निशान लगाते हैं, यह भी तो मूर्ति पूजाका ही एक प्रकार है।

इसी तरह सिक्ख भाइयोंने भी गुरुद्वारों, झंडासाहिब, ग्रन्थ-साहिब, पञ्जासाहिब, पञ्चककारादि अनेक साकार पदार्थोंको पूजाक अंग बनाया हुआ है।

आर्यसमाजी भी 'ओ३म्' स्वामी दयानन्दजी तथा अन्य महानु-भावोंकी तसवीरें, फोटो अपने स्थानमें लगाते हैं और उनपर पुष्पमालायें चढ़ाते हैं। 'ओ३म्' की तसवीर झंडोंपर लगाते हैं टोपियों पर 'ओ३म्' लिखाते हैं।

ईसाई जगह-जगह स्टेच्यू खड़ा करते हैं। पिछलीवार लाहौर गार्डेनमें विक्टोरियाकी मूर्तिपर किसीने स्याही पोत दी थी। सारी अङ्गरेज जाति और राजभक्तोंका खून गर्म हो गया और मुकद्द चलाये गये, हजारों रुपया खर्च किया, ये मूर्तिपूजा ही के भाव हैं।

इस प्रकारके मूर्तिपूजाके भाव सभीमें व्यापक हैं। हिन्दूशास्त्रोंमें

अधिकारी भेदसे पूजाके विधान हैं। मूर्तिपूजाको पहली सीढ़ी बना कर साधकमें त्याग, वैराग्य, तितीक्षा, दान, तपश्चर्या उत्पन्न की जाती है, फिर वह निराकारोपासक अधिकारी हो जाता है।

हिन्दूधर्मकी विशालता, गम्भीरताको आजकलकी शिक्षा और दीक्षाके प्रभावान्वित पुरुष नहीं समझ रहे हैं, उनको मूर्तिपूजाके सम्बन्धमें एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि मनुष्य भाव प्रधान है। भावोंके लिये ही मनुष्य जीते हैं और भावोंके लिये ही शिर कटवाते हैं। प्रतिदिन देखते हैं कि राज्यका झंडा ऊँचा किया जाता है, उसको सलामी दी जाती है, उस समय वह मामूली कपड़ेका टुकड़ा नहीं है, बल्कि उसके आकारमें (मूर्तिमें) राज्यका गौरव, राज्य-शक्तिके अनेक भाव भरे हैं, राजा, प्रजा सभीका शिर उसके सामने झुकता है, उसके साधारण निरादरसे हजारोंके शिर कट जाते हैं। यह सभी भाव प्रधानकी बातें हैं। जब मनुष्यका भाव पवित्र हो जाता है, तो वही मनुष्य महात्मा हो जाता है। सार यह है कि मानसिक लगन, दिलकी तड़फ, मनोवृत्तिकी एकाग्रता करनेका साधन या मुख्यांग भक्तिपूर्वक मूर्ति पूजा है। पूजाकी सामग्री, यह सब भक्तके भावकी चीजें हैं। हम ऊपर बता चुके हैं कि ईश्वरोपासनाके अनेक साधन हैं, जैसे एक बीमारकी चिकित्सा वैद्यक, यूनानी, एलोपैथी, होमियोपैथी, हाइड्रोपैथी, क्रोनापैथी आदि प्रचलित पद्धतियों द्वारा जहाँ रोगीकी श्रद्धा है होती है। इसी प्रकार ईश्वरोपासनाके जो-जो मार्ग बताये हैं, वे सभी ठीक हैं। किसी मार्गकी निन्दा करना और परस्परमें कलह और विवाद करना मूर्खता और अकारण

वैमनस्य बढ़ाकर हिन्दू जातिको निर्बल और दुखी करना है। इस विषय पर हम अब इतना ही लिखकर समाप्त करते हैं कि पूरी श्रद्धा, विश्वास और सद्गुरुओंके बनाये हुए मार्गोंसे, जहाँ जिसकी इच्छा हो, ईश्वरोपासना करें।

अवतार

अवतार शब्द (अवतृ+करणे यञ्) धातुसे बनता है और इसका शब्दार्थ चार प्रकारसे है,—

१—अवतरण अर्थात् नीचे उतरना।

२—अवतरतिय: अवतार: अर्थात् वह जो उतरता है।

३—अवतिरतिय: विशुद्ध स्वरूपेण ईश्वरीय गुणान् यस्मिन् स अवतार: वह व्यक्ति जिसमें प्रभुकी विभूति विशेष रूपसे उतराती हो।

४—अवतारयति य: स अवतार: जो दूसरोंको संसार-सागरसे उतारें।

भगवान् सर्वव्यापक हैं, उनका सृष्टि-रचना भी अवतरण है।

इससे यह पाया जाता है कि जो आत्मायें शुद्ध निर्मल हैं और ईश्वरीय विशेष गुणोंको लेकर संसारमें आती हैं और उस समयके विशेष-विशेष आवश्यक धार्मिक कार्योंको करती हैं, उनको अवतार या पैगम्बर आदि नामोंसे पुकारा जाता है।

किन्तु जिस समय विशेष रूपसे अधर्म बढ़ता है और धर्मका क्षय होता है, भगवान् स्वयम् भी प्रकट होते हैं, क्योंकि भगवान्का अंशावतार और पूर्णावतार होता है—जैसे भगवान् कृष्ण और रामका अवतार है और गीतामें कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! जब-जब धर्म्मकी ग्लानि होती है और अधर्म बढ़ता है, तब मैं जन्म लेता हूँ। साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करके युग-युगमें धर्म्मकी स्थापना करता हूँ।

इसी प्रकार मुसलमान भी मानते हैं कि खुदाका संदेश सुनानेके लिए रसूलोंको भेजता है। कुरानमें लिखा है—

"वमा अरसलूना मिहरसूलीन, विलेस्सानी, कौमेही। व कजलिक औहैना एलैके कुरानन और विपल लेनु जेरा उम्मलकोरा व मन हौलहा। व लड़ज अलन हो, कुरानन अनमियल लाकला लओ लफुस्सीलन आयातोहू।"

अर्थात् प्रत्येक जातिके पास गुरु (उस्ताद) रसूल भेजे जाते हैं, ताकि उनकी भाषामें खुदाकी असल तालीमका प्रकाश करें।

वायविलमें भी इसी प्रकार लिखा है :—

Belivest thou not that I am in the father and the father in me ! The words that I speak

into you, I speak not of myself, but father that dwellth in me, doth the works.

अर्थ—क्या ? तुमको विश्वास नहीं कि मैं पिता (ईश्वर) में हूँ और पिता मुझमें जो शब्द मैं बोलता हूँ, वह मैं नहीं बोलता, बल्कि वह पिता मुझमें वास कर रहा है बोलता है, वही इन सब कामोंको कर रहा है।

उपरोक्त प्रमाणोंसे सिद्ध है कि सभी धर्म्मानुयायी ईश्वरका अवतरण मानते हैं यह दूसरी बात है कि अवतार शब्दसे सम्बोधित न करें।

अब अवतारवाद पर जो-जो शंकायें करते हैं, उनपर भी विचार-विनिमय कर लेना आवश्यक है। शंका होती है कि अजन्मा, अजर, अमर, व्यापक ईश्वर गर्भमें कैसे आता है। यदि आता है तो अजन्मा आदि गुण नष्ट हो जाते हैं और फिर गर्भ वेदनायें भी सहनी पड़ती हैं तो वह सच्चिदानन्द स्वरूप कैसे माने जाँयगे।

इस शंकाका उत्तर यह है कि ईश्वर बिना गर्भमें आये हुए भी अपनी आंशिक शक्तिका समावेश किसी शुद्धान्तकरणमें प्रविष्ट कर सकते हैं, जिसको अंशावतार कहते हैं। अंशावतारमें भगवान् आवश्यकतानुसार किसी अंशका अवतरण करते हैं।

अब प्रश्न रहा पूर्णावतारके सम्बन्धमें। पूर्णावतार भी गर्भवेदना आदिसे और अन्य सांसारिक दुःख-सुखोंसे निर्लेप और दूर रहते हैं। आप लोग देखते हैं कि जेलखानेमें जेलके अफसर भी जाते हैं और रहते हैं, लेकिन उन्हें कोई कष्ट नहीं होता, कैदीको ही कष्ट

होता है। डिप्टी-कमिश्नर, सिविल सर्जन और अन्य निरीक्षक प्रायः जेलमें जाते रहते हैं और घंटों वहां रहते हैं, उनकी, हैसियत कैदीकी नहीं है। अफसर अफसर है, कैदी कैदी है।

भगवान् अपने भक्तोंको ही ऐसी शक्ति प्रदान कर देते हैं कि उन्हें भी सांसारिक कष्ट नहीं होते, उनकी आत्मायें ऊंची हो जाती हैं, कोई असर ही नहीं होता है। जैसे उदाहरणके तौरपर प्रह्लादको पहाड़से गिराया गया, आगमें जलानेके लिये डाला गया, मीराबाईको जहरका प्याला पिलाया गया, लेकिन कोई हानि नहीं हुई, बल्कि प्रह्लादने अपने पितासे कहा कि—

भयं भयानामपहारिणि स्थिते,
मनस्यनन्ते ममकुत्र तिष्ठति।
यस्मिन् स्मृते जन्मजरान्तकानि
भयानि सर्वाण्यपयान्तितातः॥

प्रह्लाद अपने पितासे कहता है कि हे तात! जब मेरे हृदयमें भयहारी बैठा है, जिसके स्मरण मात्रसे जन्म-जन्मान्तरोंके भय दूर हो जाते हैं, तो आप इस संसारके तुच्छ भयोंको दिखा कर किसको डराना चाहते हैं? जब भगवान्के साधारण भक्तका यह दावा है, उसको कोई कष्ट नहीं हो सकता, तो क्या भगवान्को गर्भवासकी कोई पीड़ा हो सकती है? जिसको सर्वशक्तिमान मानते हैं तो क्या उसमें ऐसी शक्ति नहीं है? इस प्रकारकी भ्रमात्मक धारणा ही ईश्वरमें अविश्वास प्रकट करती है।

अब रहा प्रश्न अजर अमर होनेका, उसका समाधान गीताके निम्न लिखित श्लोकसे हो जाता है,—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं योवेत्ति तत्त्वत:
त्यक्त्वा देहे पुनर्जन्म नैतिमामेति सोऽर्जुन।। अ० ४ श्लो० ९

भगवान् कहते हैं—हे अर्जुन ! मेरे अनोखे जन्म कर्मकी मीमांसा जो तत्त्वसे जान लेता है, वह इस संसारमें पुनः जन्म ही नहीं लेता है। फिर दफ्तरके बाबू, वकील, अदालतके अफसर, अखबारोंके एडीटर, समालोचक, दूकानदार क्या समझ सकते हैं जो रात्रि-दिन संसारिक कोल्हूके बैल हैं, पर इसपर भी वह यह कहेंगे कि गीता कोई वैदिक अथोरीटी नहीं है, इस लिए वेदका प्रमाण नीचे उद्धृत करते हैं।

प्रजापतिश्चरतिगर्भे आनार जायमानो बहुधा विजायते,
तस्ययोनि परिपश्यंति धीराः तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।

अर्थ—प्रजापति गर्भमें विचरता है और (अजायमान:) कभी जन्म न लेनेवाला होनेपर भी (बहुधा विजायते) अनेक प्रकारसे उत्पन्न होता है (धीराः तस्ययोनि परिपश्यंति) आत्म तत्त्वज्ञानि उसके स्वरूप को देखते हैं (तस्मिन् विश्वा भुवनानि तस्थु:) और सब चराचर उसीमें स्थित हैं।

गीताकी रचना वेदानुकुल हुई है और भगवान्के मुखसे ही उसका अवतरण है और भी गीतामें इस सम्बन्धमें कहा है कि :—

अजोऽपिसन्न व्ययात्मा भूतानामीश्वरोपिसन्।
प्रकृतिं स्वामवस्तृभ्य संभवाम्यात्म मायया।।

ईश्वर अजन्मा है और जन्म लेता है, व्यापक है और एक देशीय है पूर्ण है, पूर्णमेंसे निकाला जाता है फिर भी पूर्ण है। उपनिषद कहते हैं—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ईश्वरकी अनन्त शक्ति हैं, जिनका ज्ञान हजारों और जन्म जन्मान्तरोंकी तपस्या एवं वेद शास्त्रोंके मर्मको समझनेसे ही प्राप्त होता है, साधारण शिक्षा प्राप्त लोगोंकी बुद्धि और तर्क, अज्ञानताका ही परिचायक है, अवतारोंके सम्बन्धमें पौराणिक कथायें इतिहास वेद महत्त्वकी वस्तु हैं। पुराणोंमें बड़े बड़े गहन तत्त्व छिपे हुए हैं, जिनको आज-कलकी दुनियाँ उपहासकी दृष्टिसे देखती है। कभी अवसर मिला तो पौराणिक तत्त्व और उनकी यथार्थता बतायेंगे, जिससे आप सनातन धर्म प्रतिपादित सिद्धान्तोंका अनुशीलन करके लाभ उठा सकेंगे।

हिन्दू शास्त्रों में २४ अवतारोंका होना माना गया है, उनमें भी कुछ अवतारोंपर लोगोंकी शङ्कायें रहती हैं और मत्स्य, कूर्म, वराह आदिपर बड़े-बड़े आक्षेप करते हैं। वास्तवमें भगवान्के अवतार होनेका तत्त्व है समयकी आवश्यकता ही, वैसे रूप रङ्गमें ही भगवान् आते हैं।

मत्स्यावतार—आरम्भमें हजारों वर्षतक जल ही जल था, कोई सृष्टि न थी, किसी जगह भी खुस्की न थी, उस समय भगवान्ने

अपनी कलाका विकाश मत्स्य विशेषमें करके उस समयके कार्य्यौंका संचालन कराया।

कूर्मावतार—जब कुछ समय बाद खुस्की आई तो ऐसी जरूरत पड़ी जो खुस्की और जलीय दोनों स्थानोंमें कार्य्य कर सके तो भगवान्‌की कला कच्छप विशेषमें आई और आवश्यक कार्य्यौंका संचालन दोनों तरहके जीवोंका प्रतिनिधित्त्व करके किया।

बराह—अभी पृथ्वीमें दृढ़ता नहीं आई थी, आवश्यकता ऐसी विशेष शक्तिकी हुई, जो कीचड़को निकालकर कठिन भूमि बना सके, ऐसा जन्तु शूकर था, उस समय उसको ही प्रतिनिधित्त्व दिया गया।

नृसिंहावतार—जब पृथ्वी कठिन हो गई, उन स्थानोंमें पशु, पक्षी, अभिव्यक्त हुए, घास, लता पत्र निकले, सृष्टि क्रम आगे बढ़ने लगा तो उस समय ऐसे राक्षस उत्पन्न हुए, जो न तो मनुष्याकार थे, न पश्वाकार, उस समय नृसिंहावतार होकर सृष्टिका संचालन किया, यह चारों अवतार सृष्टिके आरम्भमें हुए, यह सृष्टिके आरम्भिक विकाशके समयकी बात है।

वामनावतार—जब सब अपूर्ण मनुष्य उस राक्षसी सृष्टिमेंसे अभिव्यक्त हुए, तो भगवान्‌के प्रतिनिधित्वके लिए ब्राह्मणके वामन रूपमें अवतार हुए।

परशुराम—जब सृष्टि चल पड़ी, गाँव शहर आबाद हुए, राजाओंने धर्म्म विरुद्ध आचरण किये, तो उनको योग्य शासनाधिकारी बनानेके लिए ब्राह्मण कुलमें परशुरामजीका जन्म हुआ, क्योंकि ब्राह्मण ही राजाओंको दण्ड दे सकता है।

रामावतार--लेकिन दंडसे कोई शासन अधिक समय तक स्थायी नहीं रह सकता है, उस व्यवस्थामें मर्यादा बांधने और शिक्षा देनेके लिये भगवान् रामका अवतार हुआ। रामावतारने सारे संसारको मर्यादाकी शृङ्खलामें जोड़ दिया। आदर्श राजा, आदर्श भ्राता, आदर्श मातृ-पितृ भक्ति आदिका ज्ञान कराया और धर्म विरोधियोंको संसारसे मुक्त कर दिया।

कृष्णावतार—इसके बाद लम्बे काल तक राम संस्थापित मर्यादा चलती रही, जब उसमें ढीलापन आया और पापाचार बढ़ने लगे, तो उस समय भगवान् कृष्ण पूर्णांशावतार हुए।

उपरोक्त साधरण कल्पनायें अवतारोंके सम्बंधमें बताई गई हैं। पूरा विवरण पुराणोंमें ही मिलता है। यदि श्रद्धा विश्वाससे पुराणों का मंथन हो, तो किसी भी प्रकारकी शंकाको स्थान न मिले।

वर्तमान समयमें यह तो सभी मानते हैं, कि देशकी जब दशा बिगड़ती है तो खास आत्मायें संसारमें आती हैं; सुधारक, पैगम्बर, आदर्श पुरुष, योगी महात्माके रूपमें कार्य करती हैं।

बस फर्क इतना ही है कि भावुक पुरुष उनमें अपनी पूज्य बुद्धि रखकर विनय, कृतज्ञता, श्रद्धा आदिके भाव रखते हैं और विशेष

सम्मान देते हैं। यही अवतारवाद है, जिसको लेकर अकारण विवाद होता है। सभ्य शिक्षित लोगोंको ऐसे विषयों पर विवाद न करके गम्भीरतासे मनन करना चहिये।

संध्या-तर्पण, देवदर्शन, श्राद्ध

संध्या—वेदोंमें मनुष्य समाजके लिये कर्मोंका विधान है। वेदमें एक लाख ऋचायें हैं। जिनमें ८० हजार कर्म कांडका वर्णन करती हैं और १६ हजार उपासनाको बताती हैं। कर्म कांड उपासना कांडके विधानको पूर्ण कर लेनेपर ज्ञान कांडका अधिकारी मनुष्य होता है। इसलिये प्रातःकालसे सायंकाल तक सभी नित्य नैमित्तिक कर्मोंका वर्णन है। प्रातःकाल सूर्य्योदयसे पहले उठनेका विधान है, दो समयोंके मिलानको संध्या कहा जाता है (अर्थात दो समयोंकी संधि)। दिनके नैतिक कर्मोंमें सबसे पहले प्रातःकालकी संध्या है, स्नानके बाद वेद मंत्रों द्वारा ईश्वर स्मरण और सूर्य्यको अर्घ्यदान किया जाता है।

मनुष्य जीवनका ध्येय ईश्वर प्राप्ति है। ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान कुछ भी कहें यह सब एक ही के वाचक हैं, इस ध्येयको प्राप्त करनेके लिए क्रमशः चलना पड़ता है। इसलिए संध्या क, ख, की तख्ती है, इस

कर्मके करनेसे मन प्रसन्न रहता है और अज्ञात-पाप हिंसादिकी निवृत्ति होती रहती है। तीन प्रकारकी हिंसा है। स्थूल, सूक्ष्म और अज्ञात। स्थूल हिंसाकी सजा राजकीय ,जेलखाने हैं और-और सजायें भी हैं। सूक्ष्म हिंसाके लिए व्रतादिका विधान, अज्ञात हिंसाकी निवृत्तिके लिए संध्या कर्म आवश्यक है।

अब इस संध्या कर्मके सम्बंधमें भी शंका करते हैं कि यह तो ठीक है, भगवान्का नाम लेना चाहिये। इसकी बाबत बता देना जरूरी है कि भगवान्के नामका स्मरण राम, राम, 'नमोभगवते वासुदेवाय नमः' 'शिवाय माधवाय नमः' 'केशवायनमः' कुछ भी जप करो सभी ठीक है, लेकिन जो पढ़े लिखे हैं, वेद मंत्रोंको पढ़ सकते हैं, बोल सकते हैं, वह सूर्य्यको अर्घ्यदानके सम्बंधमें कहा करते हैं, यह बात फिजूल है। इधर उधर पानी फेंकना, सूर्य्यको अंजली देना। उनके लिये यह लिखना आवश्यक है कि फिजूल नहीं है, इसमें भी तत्त्व है और सूर्य्य-देवकी तृप्तिका विषय है। अर्घ्यदानसे सूर्य्य तृप्त होते हैं, अब यह बात कि सूर्य्य कैसे तृप्त होते हैं, यह जानना है। वह दी हुई अंजलीका पानी वहीं तो पड़ा रहता है, इसका उत्तर यह है कि दैवी आसुरी दो प्रकारकी सृष्टि है। दैवीमें देवता और आसुरीमें राक्षस हैं। देवताओंने सत्य धर्म ग्रहण किया, दैत्योंने मिथ्या धर्मको लिया। जैसे (देवा सर्वं सत्यमवदंत विहजूरा मिथ्या अवदंत) सत्य धर्मवाले देवता सूर्य्य चंद्रमा इन्द्रादि उनके अलग-अलग काम सपुर्द हैं। सूर्य्य प्रभुका प्रकाश स्वरूप है, अंधकारका नाश करनेके अतिरिक्त उनको यह शक्ति मिली है कि देवताओंको जो पदार्थ यज्ञादिमें अर्पण किये जाते हैं, उनके

सूक्ष्मांशके तत्त्वको देवताके पास पहुंचायें और उनसे देवताओंकी तृप्ति होकर संसारका कल्याण हो। इसी सिद्धांतको लेकर श्री १००८ स्वामी करपात्रीजी महाराज यज्ञादि करते हैं। आजकलके तार्किक लोगोंकी शंका है कि सूर्य्य देवताओंका डाकखाना कैसे बना और वह स्थूलांश जो यज्ञादिमें दान हवन द्वारा दिया गया, उसका सूक्ष्मांश कैसे बनेगा और कैसे देवताओंके पास पहुंचेगा, समझसे बाहरकी बात है?

इसका उत्तर यदि यह दिया जावे कि शास्त्रों में लिखा है तो यह लोग माननेको तैयार नहीं, क्योंकि एक तो इनकी अकल बड़ी तेज है, दूसरे वर्तमान साइन्सका पचड़ा इनके मस्तिष्कमें घुसा हुआ है। हर बातको अपनी अकल और साइन्सकी कसौटी पर रख कर परखना चाहते हैं, चाहे इनकी अकल और वर्तमान साइन्सकी वहाँ तक पहुंच भी न हो, ऐसे लोंगोंके लिए जब तक वर्तमान साइन्ससे मिला कर कोई बात न बताई जावे, समझमें न बैठेगी, वर्तमान साइन्सदां यह स्वीकार करते हैं कि सूर्य्य पृथ्वी पर से जलको खींचता है और वही जल वर्षा रूपमें होकर पृथ्वी पर गिरता है, आज तक किसीने पृथ्वी और समुद्रके दरम्यान नाले नहर बने हुए नहीं देखे हैं, जहाँसे जल सूर्य्यके पास पहुंचता है। कहा जाता है कि सूर्य्य रस्मियों द्वारा जलका आकर्षण होता है तो फिर भला हमारी संध्याकालीन अर्घ्यांञ्जलीका जल क्यों नहीं पहुंचता है और यज्ञादिमें दिये हुए पदार्थोंका सूक्ष्मांश क्यों नहीं जाता है? इसलिये संध्या समय अर्घ्य देना चहिये और जो अपठित हैं वह भगवान्के नामका स्मरण करें और अंजली दें और संध्या दोनों समय अवश्य करें।

तर्पण—संध्या कर्मके साथ ही साथ तर्पण है। तर्पणका अर्थ यह है कि प्राचीन ऋषियों, देवताओं और अपने पितरोंको प्रातःकाल स्मरण करके यव, जल, पुष्प, चंदन आदिकी अंजली उनकी तृप्तिके लिए छोडते हैं और यह विश्वास है कि पितर प्रसन्न होंगे। शंका करने वाले शंका करते हैं कि एक चुल्लु भर पानीसे देव, ऋषि, पितर सबको तृप्त कर देते हैं और वह जल भी यहाँ ही पड़ा रहता है। ऐसे शंकितमना इसके रहस्यको नहीं समझते हैं (जल कैसे पहुंचता है, यह संध्याके विवेचनमें लिखा गया है) स्थूल जगत् और सूक्ष्म-जगत् दो प्रकारके जगत् हैं। जो सत्ता (ताकत) स्थूलमें है, उससे हजार गुणी शक्ति सूक्ष्ममें है, जैसे मनों बोरी चीनीका मिठास एक थोड़ीसी सेक्रीनमें आ जाता है, मणो गिलोयका सार थोड़ेसे सत्व गिलोयमें होता है, थोड़ासा टंकीका पानी वाष्प बन कर इंजिनको उड़ा ले जाता है। इसी प्रकार देवता, ऋषि, पितरोंको जलांजली दान प्रेम पुरःसर स्थूल जगत्‌की भावना है, मनकी भावनाके साथ जुड़कर पितरोंकी तृप्तिका साधन होते हैं। इसके अतिरिक्त संसारके जितने भी पदार्थ हैं. उन सबका सार भूत जल, पुष्प, तिल, अन्नमें वास करता है; जैसा कि उपनिषद् कहते हैं—

"एषां वै भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्यामापः आपाभौषधयः औषधीनां पुष्पाणि पुष्पाणां फलानि फलानां पुरुषः।"

देवता या पितरादि सूक्ष्म जगत्‌के वासी हैं। वह स्थूल पदार्थोंको खाते पीते नहीं, वह तो इन पदार्थोंके अमृतांशको देखने मात्रसे ही प्रसन्न होते हैं जैसा कि छांदोग्य उपनिषद्‌में कहा है,—

न वैदेवा अश्नन्ति न पिबन्ति एतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यंति।
छां० ३. ६. १

जो लोग सूक्ष्म जगत्के ज्ञानको समझते हैं, उनके लिए इन सब वस्तुओंमें सार है, लेकिन जो इस स्थूल जगत्से बाहर कुछ समझते नहीं, उनके लिए तो समझना भी कठिन है। किन्तु अब तो अङ्गरेजों और अमेरीका वालोंने भी पितरोंका आवाहन, मृतात्माओंका आवाहन करके हिन्दू शास्त्रोंकी सत्यता पर मोहर लगादी है। भारतवर्ष में भी मि० वी० डी० ऋषि जो बम्बईके वकील हैं, मृतात्माओंसे संदेश लेते हैं और आवाहन करते हैं। (यदि आपको यह बातें देखनी हों तो भिवानीसे निकलने वाले परलोक मासिक पत्रको पढ़ें)

ऐसी अवस्थामें तर्पण, श्राद्धादि पर वाद-विवाद करके अपने माता-पिताके स्मरण और तृप्तिके लिए कर्म किया करें और जो न करते हों या न करना चाहें उनसे भी कोई घृणा या नफरत नहीं करना चाहिये, सुधार प्रेमसे हो न कि नफरत से।

श्राद्ध—श्राद्धके सम्बन्धमें बहुत शास्त्रार्थ हो चुके हैं और इस विषय पर बहुत कुछ विद्वानोंने लिखा भी है। यहाँ भी सैकड़ों हजारों वेद मन्त्र श्राद्धकी पुष्टिके लिए लिखे जा सकते हैं, किन्तु उनके यहाँपर लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। केवल एक दो शङ्काओंके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

एक समाज ऐसा बनता जा रहा है जो न तो कोई उपासना करता है, न किसीको भी मानता है बस खाओ पीवो मौज उड़ावो उनका सिद्धान्त है।

यावज्जीवेत् सुखंजीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

ऐसे पुरुषोंको समय-समय पर समझाने बुझानेकी जरूरत है, जब भगवान् सुमति देंगे, उनका भी कल्याण होगा। किन्तु ऐसे लोगोंसे भी विवाद नहीं करना है, यही लोग श्राद्धादिपर अधिक तर्क करते हैं, उनके लिए कुछ बातें नीचे लिखी जाती हैं।

श्राद्ध क्या है—श्रद्धासे भक्तिसे प्रेमसे जो कर्म किया जावे, वह श्राद्ध है, किन्तु श्राद्ध एक खास कर्म मृतक पितरोंके श्राद्धादिके लिए व्यवहार होता है और पार्वण श्राद्ध, एकोदिष्ट श्राद्ध यह मृतकसे ही सम्बन्ध रखते हैं, नाँदीमुख श्राद्ध शुभ कर्म्मोंके आरम्भमें किया जाता है।

श्राद्ध कर्मकी तहमें संतानकी यह भावना है कि जिन माता-पिताने जन्म दिया, पालन-पोषण किया, धन मकानादि दिये, शिक्षा दी और सभी सुखके साधन अपनी सन्तानके लिए पैदा किये, उनके प्रति कृतज्ञता और स्मरण करनेका तरीका श्राद्ध है, जिससे वह अपने माता-पिताके प्रति वर्ष दिनमें एक बार या दो बार प्रकट करता है और इस कर्मसे पितरोंको आनन्द और करनेवालोंको सुख मिलता है। यह कैसे पहुँचता है, इसका उत्तर संध्यातर्पण विवेचनमें लिखा जा चुका है, किन्तु थोड़ा-सा यहाँ भी लिखते हैं कि जर्मन, अमेरिका, लंदन आदि आठ-आठ दस-दस हजार मीलसे शब्द कैसे आता है? बिजली इंजिन घरसे रोशनी कैसे देती है? जबतक तारका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जाता है, कोई क्रिया नहीं होती है, जहाँ तारका सम्बन्ध

जुड़ा, रोशनी हो जाती है, पंखा चल पड़ता है, इञ्जन चल पड़ता है, इस तरह स्थूल जगत्में होता है, इसी प्रकार जब मनका सम्बन्ध पितरोंसे, मृतात्माओंसे जुड़नेपर वह क्रियायें होती हैं, यह सूक्ष्म जगत्का विषय है।

यहाँपर यह शङ्का की जाती है कि मरते ही जन्म ले लेता है और गीतामें भी कहा है कि जैसे मनुष्य पुराने कपड़े बदलकर नये पहन लेता है, उसी प्रकार यह शरीर छोड़कर दूसरा धारण करता है।

"वासाँसि जिर्णानि यथा विहाय.
नवानि गृह्णाति तथो पराणि।"

मरनेके बाद दूसरी योनि मिल गई फिर श्राद्धादिकी क्रियायें सब व्यर्थ, लोगोंने इसके अर्थको समझनेमें भूल की है। वास्तवमें मरनेके बाद फौरन गर्भमें चला जावे ऐसी बात नहीं है। गीताके श्लोकका यह भाव है। वास्तवमें तत्त्व यह है कि अन्नमय कोष (भौतिक शरीर) प्राणामय कोष (आकाश शरीर) Ethricdouble मनोमय कोष (इच्छा शरीर) Desired body विज्ञानमयकोष Bodhic body आनन्दमय कोष, Atmic body पहिले दो अर्थात् अन्नमय, और प्राणमय शरीरको भौतिक या स्थूल शरीर कहते हैं, मनोमय कोषको सूक्ष्म शरीर कहते हैं, विज्ञानमय कोषको और आनन्दमय कोषको कारण शरीर कहते हैं।

जब कोई प्राणी मरता है, तो उसका स्थूल शरीरसे सम्बन्ध छूट जाता है और अन्नमय कोष क्षीण हो गया, जीवात्मा बाकीके कोषोंमें लिपटा हुआ भ्रमता रहता है। इसी लोकमें, क्योंकि उसके प्राणमय

कोषकी प्रवृत्ति अन्नमय कोषसे देरतक सम्बन्ध रहनेके कारण उसकी तरफ खिंची रहती है, प्राणमयकोष अग्निमें क्षीण नहीं होता है।

अग्नि तो सिर्फ अन्नमय कोषको ही भस्म करती है। जब २।४ दिन बिना आधारके प्राणमय कोष रहता है, तो उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है फिर मनोमयादि बाकी कोषोंसे लिपटा हुआ जीव अपनी वासनाओंसे बंधा हुआ अपनी तृप्तिके लिए घूमता रहता है, १०।१२ दिन इस प्रकार मनोमय कोषके क्षीण होने लग जाते हैं, इसके बाद जब वह सूक्ष्म शरीर भी क्षीण हो जाता है तो कारण शरीरमें लिपटा हुआ जीव अपने कर्मानुसार देवमान मार्गसे मोक्षका रास्ता या पितृमान मार्गसे स्वर्गादिका रास्ता या अपने कर्मानुसार कुछ काल अन्तरिक्षमें रहकर जन्म ग्रहण करता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो १२ दिनतक प्रेतकर्म किये जाते हैं, वह मृतात्माको सुख और शान्ति देनेमें सहायक हैं। शास्त्रोंमें श्राद्धादिका विषय विद्वानोंने बड़ी खोजके साथ रखा था। आज-कलके लोग उनपर विश्वास नहीं करते हैं उनकी इच्छा है, पर इस प्रकारकी भावनायें बढ़ते-बढ़ते ईश्वरविमुख बना देती हैं, इस लिए आस्तिक भावोंके प्रचारकी आवश्यकता है।

देव दर्शन—देवताओंमें परमात्माकी विशेष शक्ति रहती है। एक प्रकारसे यों कहना चाहिये कि देवशक्ति ईश्वरीय विभूति है, जैसा वेदमें कहा है—

स वरुणः सोऽयमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यत स सविताभूत्वाऽन्तरिक्षेण याति, स इन्द्रोभूत्वा तपति मध्यतोदिवम्। यो देवानां प्रभवश्चादे भवश्च, धियो रुद्रो महर्षि॥ (श्वे० उ०)

अर्थात् परमात्मा ही नाना विध रूपशक्तिसे संसार संचालनमें संलग्न है, जैसे इस स्थूल अर्थात् भौतिक जगतमें मनुष्य विविध प्रकारका कार्य्य करता है, कई प्रकारकी मशीनें बनाता है, नहरें निकालता है, बिजली और विष्फोटक चीजें बनाता है, भौतिक जगत्के इन जड़ पदार्थोंका काम मनुष्य नाना रूपोंमें होकर करता है, कहीं ड्राइवर है, कहीं फायरमेन, इञ्जीनियर है, कहीं पायलेट है, किन्तु वह एक मनुष्य ही है कार्य्य विशेषसे उसका नाम विशेष है। भौतिक जगत्के विज्ञानको साइन्स कहते हैं। और देवताओंसे काम लेनेके तरीकेको यज्ञविधान, देवा यज्ञ कहते हैं अधिदैवत जगतस्थ कार्य्य सूक्ष्म हैं और उसकी सिद्धि मानसिक भावों और श्रद्धापर है।

यहाँपर एक शङ्का होती है कि जब देवता ईश्वरकी शक्ति और विभूति हैं, तो उपासना आदिके अनेक भेद-प्रभेद क्यों हैं ? यह शङ्का वड़ी लचर और निर्मूल है। साधारणतः स्थूल जगत्में दूध एक पदार्थ है, उसके विकार दही-लस्सी रबड़ी, पेड़ा, खोआ, घी बन जाते हैं, लेकिन इनके गुण अलग-अलग हैं, इसी प्रकार देवोपासनाको समझना चाहिये, देवदर्शन, देवपूजा और यज्ञादि कर्मों द्वारा ईश्वर प्राप्ति होती है। इसमें सन्देहको आस्तिक भावना और निष्ठावालोंके लिये स्थान नहीं हैं। देवताओंके प्रति किया हुआ कर्म भगवान्को पहुँच जाता है, जैसे—

आकाशात पतितं तोयं यथागच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कारं केशवं प्रति गच्छति ॥

जैसे आकाशसे वर्षा होकर गिरा हुआ पानी समुद्रमें पहुँच जाता है, इसी प्रकार सब देवताओंके प्रति किया हुआ नमस्कार अर्चन, पूजन, भगवान्‌को पहुँचता है। श्री मद्भगवत्गीतामें कहा है—

येऽप्यन्य देवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विता।
तेऽपि मामेव कौंतेय यजंत्यविधिपूर्वकम् ॥

इसलिये देवदर्शन पूजा आदि मनकी पवित्रताके लिये जरूरी है और प्रातःकाल-सायंकाल नियमसे देवदर्शन करके चरणामृत लेनेसे बड़ी और आनंदकी प्राप्ति होती है।

वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्थाका स्वरूप वेदोंने यह बताया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासिद्बाहु राजन्यकृतः
ऊरू तदस्यवैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायतः।

ब्राह्मण भगवान्‌के मुखसे, क्षत्रिय बाहुसे, वैश्य जंघासे और शूद्र पैरोंसे उत्पन्न हुए। चारों वर्ण भगवान्‌के अङ्ग हैं और इनके कर्म कर्तव्य भी भगवान्‌ने ही आरम्भमें नियत कर दिये थे, जो आजतक चले आते हैं, इनमें कोई छोटा-बड़ा, उच्च-नीच नहीं है। अपने-अपने स्थान और समयपर यथा-योग्य सबको सबकी आवश्यकता है। किसी एकके बिना दूसरोंका कार्य्य निर्वाह नहीं हो सकता है, इन

चारों वर्णोंका पारस्परिक बंधन धार्मिक बंधन है। हजारों वर्षसे यह बंधन चला आ रहा है और कई बार वर्ण-व्यवस्था पर हमले और आक्षेप हुए, किंतु 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।' के सिद्धान्तने इसकी रक्षा की है और वर्णव्यवस्थाके ही आधार पर हमारा गौरव है। साँसारिक व्यवहार दृष्टिसे भी हम जब हिन्दू जातिके इतिहासको देखते हैं तो लाखों वर्षका इतिहास ज्वलन्त रूपसे वर्तमान है। जो जातियें वर्णव्यवस्थासे निकल कर अन्यत्र जा मिली उनका कुछ भी पता-ठिकाना आज नहीं मिल रहा है। वर्ण-व्यवस्थाहीन जातियें वर्षाकी घासकी तरह उत्पन्न होती हैं और नष्ट हो जाती हैं। जहाँ वर्णव्यस्था नहीं, वहाँ कुल, जाति, धर्मकी कोई मर्यादा नहीं रहती। नई जातियें बनीं, लेकिन जल्दी ही वह नष्ट होती गईं। इन बातोंका इतिहास साक्षी है। वर्ण-व्यवस्थाके गुण और प्रशंसाके सम्बन्धमें हिन्दू शास्त्र भरे पड़े हैं। कहाँ तक कहें किन्तु जो लोग वर्णव्यवस्थाके विरोधी हैं, उनकी कुछ दलीलोंका जिक्र करना यहाँ आवश्यक है, वह कहते हैं कि वर्तमान संसारकी उन्नतिमें वर्ण व्यवस्था बाधक है और वर्ण व्यवस्था संकीर्णता पैदा करती है, एक दूसरेसे नफरत, घृणाके भाव पैदा होते हैं। स्वराज्यकी प्राप्तिमें और रक्षामें वर्णव्यवस्था घातक है। मनुष्य मात्र एक है और एकीकरणके भाव रहनेसे ही देश सुखी होगा। जब तक यह हजारों बखेड़े हैं, देशकी उन्नति नहीं हो सकती, स्वराज्य नहीं मिल सकता।

सबसे पहले तो हम यहां पर उन्नति शब्दके सम्बन्धमें कुछ

लिखना चाहते हैं कि उन्नतिका क्या अर्थ है ? आजकलकी दुनियांमें उन्नतिका अर्थ यह समझा जा रहा है कि अङ्गरेजी पढ़-लिख कर एम० ए० एल-एल० बी० वार एटलॉ, इंजीनियर, डाक्टर, प्रोफेसर, साइन्सदाँ हों और मशीनों, मोटरों, हवाई जहाजों, कल कारखानोंके ज्ञानमें माहिर हों, कानूनके पुतले हों, वर्तमान साइंस उनकी अंगुलियों पर नृत्य करती हो, तरह-तरहकी इन्डस्ट्रीके जानकार हों, अपनी रोटी कमानेमें कोई भी काहिल न हो। जज, मजिस्ट्रेट, मिनिस्टर, गर्वनर सब हिन्दुस्तानी हों।

तरक्कीकी पहली बात ऊपर पढ़ चुके। दूसरी बात तरक्कीकी यह हो कि खानेमें पीनेमें रहनेमें सहनेमें विवाह शादीमें क्लबमें सोसायटीमें आनेजाने और जिंदगीके मजे लेनेमें पूरी आजादी हो, किसी प्रकार का कोई बंधन न हो। न किसी प्रकारकी जाति-पातिका पचड़ा हो।

तीसरी तरक्कीकी बात और है कि स्त्रियें सब पढ़ी-लिखी हों और उनको पूरी आजादी हो जिससे चाहें विवाह करें और नापसंद आवे तो मर्जीके मुताबिक दिनमें चारोंको पति बनावें और तलाक देवें।

चौथी तरक्की (उन्नति) यह है कि धर्म कर्म माता पिता और दूसरे रिस्तेदारोंका कोई ताल्लुक न रहे Joint faimilyer. सिस्टमका भी खातमा किया जावे। मतलब यह है कि अङ्गरेजोंमें भी जो वाहियात बातें नहीं है, वह सब भी की जांवें।

ऊपर चार प्रकारकी उन्नतिकी सीढ़ियें बताई गई हैं, जिनके लिए वर्ण व्यवस्थाको तिलांजली देनेके लिए भगीरथ प्रयत्न जारी है।

अब हम उपरोक्त, उन्नतिके सम्बंधमें अपने विचारोंको फिर किसी समय अवकाश मिलने पर लिखेगें कि यह उन्नति है कि गिरावट है। इस समय पाठकों पर ही हम इस विषयको छोडते हैं कि वही यथामति इसका निर्णय करें।

यह उचित प्रतीत होता है कि जो शंकायें ऊपर वर्णव्यवस्थाके सम्बंधमें की गई हैं, उनके सम्बंधमें कुछ सूत्र रूपसे पाठकोंको बताया जावे। वर्णव्यवस्था संसारकी उन्नतिमें बाधक है, जो उन्नतिकी चार सीढ़ियें ऊपर बताई जा चुकी हैं, उनके सम्बन्धमें तो अभी लिखना उचित नहीं है। आगेकी सभी शंकाओंका साधारण उत्तर यह है कि वर्णव्यवस्था संकीर्णता नहीं सिखाती है, विशालता देती है और न ही वर्णव्यवस्था फिरकेबंदी पैदा करती है और न ही स्वराज्यकी प्राप्तिमें और रक्षामें बाधक है।

जो लोग वर्णव्यवस्थाके विरोधी हैं, यदि वह कोई ऐसी व्यवस्थाका नमूना उदाहरणके तौर पर चला कर संसारके सम्मुख दिखाते, जिससे उनकी इस युक्तिका कुछ बल प्रमाणित होता, बल्कि देखा जा रहा है कि दिन प्रति दिन अधिक पार्टियें और धड़ेबंदियें होती जा रहीं हैं, जैसे हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, जैन, अछूत। इनके अलावा कांग्रेस पार्टी, कामरेड पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, यूनियनिस्ट पार्टी, शोसलिस्ट पार्टी, मुसलीम लीग, हिन्दू सभा, रेडीकल पार्टी, कहां तक गिनावें फिरकेबंदीका बाजार गर्म है और अपनी-अपनी पार्टी और अपने-अपने आदमियोंको उभारना सहायता करना ही इन पार्टीवालोंका काम देखा गया है।

वर्णव्यवस्थाका आदर्श जब पूर्ण रूपसे प्रचलित था, उस समय एक ब्राह्मणका जन्म इसलिए होता था कि वह धर्म और देशके लिये जीवेगा तथा धर्म और देशके लिये मरेगा और सारे संसारकी विभूतियें और सामग्रियोंको त्याग कर कठिन तपश्चर्या ही उसका जीवन था। सारी ब्राह्मण जातिका यह आदर्श था, कि मध्याह्नकालके भोजन कर लेने पर कोई खाद्य सामग्री घरमें शेष (बाकी) न बचे। सायंकालके लिये किसी प्रकारका संग्रह घरमें नहीं होता था। यदि दुपहरके भोजनके बाद सायंकालकी शेष सामग्री रहे, तो वह ब्राह्मण पतित हो जाता था। सारे देशकी शिक्षा-दीक्षाको वह संभाले हुए था। जब संसारमें क्षत्रिय, वैश्य शूद्रोंपर कोई कठिनाई आती थी, गुफाओंमेंसे अपनी तपश्चर्याको छोड़कर मरनेके लिये ब्राह्मण आगे आता था। पिछले इतिहासको जाने दें, अभी हजार पन्द्रहसौ सालका जिक्र है। जब आपके वेदशास्त्र जलाये जा रहे थे, चोटियें और जनेऊ तोड़कर पैरों नीचे रोंदे जाते थे, उस समय ब्राह्मणोंने ही सारे वेदशास्त्रोंको कंठ किया और वह पहाड़ोंकी कंदराओंमें छुप गये। धर्म और शास्त्रोंकी रक्षा की, जब शान्तिका समय आया, तो सब वेदशास्त्र उगल दिये गये, जिस गीता और उपनिषदोंके ज्ञानके लिये अमेरिका और जर्मन भारतका मुंह ताकते हैं, यह सब जल चुके थे। यह सब वर्ण-व्यवस्थाकी मर्यादाका ही फल था, जो ब्राह्मणोंने रक्षा की। ज्यों-ज्यों वर्ण-व्यवस्थाके बन्धनमें ढीलापन आ रहा है, हिन्दू जातिका पतन हो रहा है, एक जाति दूसरी जातिको प्रेमकी दृष्टिसे नहीं देखती है, बल्कि एक जाति दूसरी

जातिपर आक्षेप और दोषारोपण करती है। गरीब हैं वह कहते हैं कि इन मालदारोंने हमारा खून पीकर ही धन इकट्ठा किया है। मालदार कहते हैं कि इनका अमुक समयमें जब कहता था पता भी न चलता हमारे ही लोगोंने रक्षा की थी और खानेको दिया था। इस प्रकारके हजारों उदाहरण लिखे जा सकते हैं, जिससे जातिके विरोधकी भमक निकलती प्रतीत होती है, इससे हमारे सांसारिक जीवनकी शान्ति भङ्ग हो गई है, इसलिये अब वर्ण-व्यवस्थाको दृढ़ करते हुए पारस्परिक प्रेम, सद्भावना और एक दूसरेको सहायता करना, किसीके भी अधिकारोंमें अनुचित हस्तक्षेप न करना, सङ्कीर्णता, अनुदारता आदि कुत्सित भावोंको निकालना, जो बन सके परोपकार करना, परोपकार और दान देकर कभी यह भाव न रखना कि मैंने ही इसकी सहायता की है, नहीं तो यह जाति, यह मनुष्य, पता नहीं कहां चला जाता। बस इस प्रकारकी कुत्सित भावनायें नष्ट होने पर विश्वकल्याणकी भावनायें जागृत होंगी, तब अधर्मका नाश और धर्मकी जय होगी, देशमें सुख शान्ति और समृद्धि होगी।

शुभम् भूयात्





रत्नाकर प्रेस, कलकत्ता।